''दूसरा सप्तक के कवियों की काव्य-भाषा''

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल्0 उपाधि हेतु

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध सार

निर्देशक–

डॉ० राम कमल राय

(पूर्व प्राध्यापक)

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

शोध कर्ता–

तीर्थ राज राय

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

2002

अज्ञेय जी के सम्पादकत्व मे 'दूसरा सप्तक' सन् 1951 मे प्रकाशित हुआ। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह सात कवियो नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादुर सिह, भवानी प्रसाद मिश्र, डॉ0 धर्मवीर भारती, हरिनारायण व्यास और शकुन्तला माथुर की कविताओ का सकलन है। 'दूसरा सप्तक' के इन सातो कवियो को नयी कविता की शीर्षस्थ कवियों के रूप मे देखा और स्वीकार किया जाता है। ये प्रयोगशील काव्यधारा की प्रवहमानता के उतने ही बडे वाहक है, जितना नयी कविता की जमीन के निर्माता। 'दूसरा सप्तक' की कविताएँ उनके रचयिता कवि अपनी सर्वाधिक विशिष्ठिता की पहचान अपनी काव्य–भाषा के माध्यम से कराते है। इस शोध–प्रबन्ध की तैयारी के क्रम मे बार–बार जिस विशिष्ठता ने शोधकर्त्ता को प्रभावित और अविभूत किया वह इन कवियो की काव्य–भाषा ही थी। काव्य–भाषा के कितने आयाम इन कवियों की काव्य–यात्रा मे खुलते है वह किसी भी सजग पाठक को चमत्कृत करने के लिए पर्याप्त है। यों तो 'दूसरा सप्तक' की भूमिका मे ही अज्ञेय ने सर्वाधिक बल कविता की भाषा पर ही दिया है, किन्तु ये कवि स्वयं अपनी कविता की भाषा इतनी शिद्‌दत से और मौलिक सर्जनात्मक प्रयास से निर्मित करते हैं कि पाठक इस नयी कविता भाषा को स्वायत्त करने मे बहुत गहरी पाठकीय क्षमता का और ग्रहण शीलता की जरूरत महसूस करता है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को प्रस्तावना और उपसंहार सहित कुल सात अध्यायो मे बॉटा गया है। दूसरे से लेकर छठें अध्याय मे 'दूसरा सप्तक' के पांच प्रमुख कवियो– नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादुर सिह, भवानी प्रसाद मिश्र और डा0 धर्मवीर भारती की भाषिक संरचानाओं का एव सवेदनाओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। शेष दो कवियों हरिनारायण व्यास और शकुन्तला माथुर की भाषिक सरचना को प्रस्तावना में ही समेटने का

प्रयास किया गया है। अध्याय सात मे उपसंहार शीर्षक से पूरे शोध–प्रबन्ध का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना में 'दूसरा सप्तक' मे संकलित सातों कवियो द्वारा दिये गये अपने–अपने वक्तव्यो से, उनके भाषा सभी दृष्टिकोणों को उद्धृत किया गया है। यद्यपि 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में ही अज्ञेय जी ने शब्द और उसके अर्थ पर एक विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है। किन्तु सभी कवियों ने अपने–अपने वक्तव्यों में अपनी भाषिक सरचना और उसकी बनावट पर प्रकाश डाला है। इन वक्तव्यों से शोध कर्त्ता को इन कवियों की काव्य भाषा को समझने मे काफी मदद मिली है। इसी प्रस्तावना मे हरिनारायण व्यास और शकुन्तला माथुर की काव्य–भाषा का भी अध्ययन किया गया है। हरिनारायण व्यास की काव्य–भाषा अपने मे प्राकृतिक उपादानों को समेटते हुए चलती है। इनकी कविताओ के प्रतीक यथा साध्य जीवन के सान्निध्य से ग्रहण किये गये हैं। जैसा कि उन्होने स्वय कहा है– "भाषा जीवन और समाज का एक प्रबल शस्त्र है, किन्तु उसे जीवन से अलग होकर नहीं, जीवन में ही रहना है। यदि कविता की भाषा दुर्वोध रही तो उसका कर्म– अर्थात् लडने में मुनष्य का सहायक होना अधूरा ही रह जाता है। इस लिए ग्राम–गीतों के शब्द और लय मुझे प्रिय हैं।" इन्होने अपनी कविता की भाषा ग्रामीण परिवेश के आस–पास ही रखी। इसमें भारतीय कृषि परम्परा और सम्पूर्ण प्राकृतिक परिसर समाहित है। यद्यपि शकुन्तला माथुर ने कविता अपने को सन्तुष्ट करने के लिए ही लिखी थी, फिर भी इन्होंने भांति–भांति के नगरों, रंगीन भवनो, क्लबों नर–नारियों, तेजी से चलते जीवन से लेकर अंधेरी तंग गलियों और सुनसान गांवों तक का चित्र अपनी कविताओं में उकेरा है। जहॉ तक इनकी काव्य–भाषा का सवाल है, वह बिल्कुल सरल, सीधी और जन–जन तक की भावनाओं को वाणी देती हुई दिखाई देती है।

दूसरे अध्याय में नरेश मेहता की भाषिक सरचना एवं संवेदना का विस्तृत अध्ययन किया गया है। नरेश मेहता ने एक जगह रचनाकार के दायित्व के सम्बन्ध में बात करते हुए कहते हैं–" बिना भोगे कृति रचना नही हो सकती। ऐसा भोगना सुन्दरतम् के साथ–साथ विकृतता के साथ भी करना होता है। रचना प्रक्रिया के स्तर पर सुन्दर और विकृति में कोई भेद नही होता । इसलिए कलाकार का दायित्व वस्तुत अपने और रचना के प्रति सम्भव हो सकता है। यह दूसरी बात है कि प्रकारान्तर में वह अन्य के प्रति भी दायित्व पूर्ण हो जाये। इसीलिए कला को मूलत· असंग होना चाहिए।" भाषा को लेकर कवि की दृष्टि को हम उन्हीं के शब्दों में देखें–" प्रायः तो भाषा के स्तर पर ही अधिकांश कवि, काव्य–श्रोता एव पाठक काव्यात्मकता की तलाश में रहते हैं। कितने जानते हैं कि काव्य, भाषा को शब्द और अर्थ से मुक्ति दिलाने की प्रक्रिया है। भाषा के बन्धन का नहीं मुक्ति का नाम काव्य है।"

नरेश मेहता की काव्य–भाषा अपनी प्रारम्भिक कविताओं के दौर से ही एक नये प्रकार की वैदिक शब्दावली और औपनिषदिक बिम्ब लोक की तलाश प्रारम्भ कर देती है। 'दूसरा सप्तक' की कविताओ में ही 'जनगरबा चरैवेति' अथवा 'उषसः अश्व की वल्गा' अथवा 'उषस्' श्रृखला की कविताएँ हमें नरेश मेहता के काव्य–भाषा की आगामी रूझान की ओर संकेत करती हैं। 'उत्सवा' तक आते–आते नरेश मेहता उस नयी काव्य–भाषा की सिद्ध प्रयोक्ता बन जाते हैं। 'उत्सवा' और 'अरण्या' की प्रत्येक कविता में हमे एक नयी आभा दिखती है और जैसे एक ललछौही आभा के बीच प्राची का सूर्योदय होता है वैसे ही नरेश मेहता के काव्य–बिम्ब नयी–नयी आभा के साथ पाठक की चेतना के समक्ष प्रकट होते हैं। कवि अपनी चेतना को उस ब्रह्माण्डीय धरातल पर ले जाता है, जहॉ एक सर्वथा चमत्कारी भाषा लोक का अविष्कर्ता बन जाता है।

'उत्सवा' की अनेक कविताएँ जैसे– 'लीला भाव', 'प्रार्थना धेनुएँ' आदि इसी औपनिषदिक बिम्ब लोक को चरितार्थ करने वाली भाषा का उदाहरण हैं।

नरेश मेहता की काव्य–भाषा की दूसरी बडी विशेषता उसकी भाववाचकता है। उन्हें यह सृष्टि अपनी भावमयता में ही आह्लादित करती है। प्रत्येक सज्ञा व्यक्तिवाचकता और जाति वाचकता को अति कमित करके अपनी भाववाचकता मे ही कवि के लिए अर्थवती होती है। उन्हे वनस्पति उतनी प्रभावित नहीं करती जितनी वानस्पतिकता।

नरेश मेहता की काव्यभाषा का एक दूसरा आयाम उनकी कविता में इतिहास लोक से जुडी हुई अनुगूँजों से सम्बन्ध रखती हैं। 'पिछले दिनो नंगे पैरों' जैसे कविता संकलन हमें इतिहास के सूने खण्डहरों और गलियारों में ले जाते है। जहाँ भाषा और अनुभूति एक तान हो जाते हैं एक लय हो जाते हैं।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के तीसरे अध्याय में रघुवीर सहाय की काव्य–यात्रा और उनकी भाषा की सर्जनात्मकता का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया गया है। उनके काव्य संकलनों 'सीढियों पर धूप में' 'आत्महत्या के विरूद्ध', 'हँसो–हँसो जल्दी हँसो, 'लोग भूल गये हैं', 'कुछ पते कुछ चिठि्ठयाँ', 'एक समय था'– से गुजरते हुए हम एक सुखद आश्चर्य से भरते हुए चले जाते हैं। कैसे अभिधा लक्षणा में बदलती है और कैसे लक्षणा व्यजना में, इसका सम्यक एहसास हमें रघुवीर सहाय की कविताओं से गुजरते हुए होता है। कैसे व्यक्तिवाचक संज्ञा जातिवाचक संज्ञा और जातिवाचक संज्ञा भाववाचक संज्ञा बनने लगती है उसका उदाहरण भी हमें रघुवीर सहाय की कविताओं में मिलता है।

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होनें सामान्य भाषा का काव्यभाषा में रूपान्तरण किया है। बोल–चाल की भाषा को जो तरलता प्रदान की है, जो व्यंजकता प्रदान की है, वही उनके काव्य–भाषा की सबसे बडी ताकत बन जाती है। साथ ही रघुवीर सहाय की

भाषा, खबर की भाषा है– नितांत, निरावरण और दो टूक। पत्रकार कवि सहाय अखबार में लू और ठड से मतदाता की मृत्यु की खबर रचते हैं और कविता मे मृत्यु की ओर बढती हुई जीवन–स्थितियों की खबर । आधुनिक हिन्दी काव्य–भाषा की एक विशेषता उसकी सपाट बयानी है। सपाट बयानी के सर्जनात्मक दोहन का आदर्श उदाहरण रघुवीर सहाय की कविता में दृष्टिगत होता है। ऊपर से देखने पर अत्यन्त सरल तथा गद्यात्मक लगने वाली उनकी भाषा बोलचाल की उस भाषा की समस्त नाटकीयता और तनाव को अपने भीतर समेटे हुए है जो सहज ही वस्तुस्थितियो की विडम्बना का उद्घाटन कर देती हैं। नयी कविता और साठोत्तरी से जुड़े होनें के कारण रघुवीर सहाय की कविताओं में व्यंग्यात्मक तेवर अधिक है अपनी सर्जन प्रक्रिया में उन्होंने जिस क्षेत्र को चुना उसमें व्याप्त पाखण्ड ढोग और व्यर्थ के दिखावे पर व्यंग्य और छींटाकशी की है। यद्यपि रघुवीर सहाय बिम्बवादी नहीं रहे हैं फिर भी उनके काव्य–सृजन मे बिम्ब अनायास ही प्रवेश करते गये हैं। उन्होने स्वीकार किया है कि बिम्ब कविता में जीवनानुभव को रचानात्मक और मूर्तिमत्ता में सम्प्रेषित करने का उपकरण मात्र है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के चौथे अध्याय में शमशेर बहादुर सिंह के काव्य–विकास और उनकी भाषिक संरचना का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। शमशेर बहादुर सिंह की पूरी काव्य–यात्रा में शोध कर्ता को उनकी काव्य–भाषा की अनेक विशिष्टताओ से साक्षात्कार होता है। शमशेर जितना अपने शब्दों से बोलते हैं उतना ही शब्दों के बीच के अन्तराल से। उनके यहॉ अन्तरालों का प्रयोग केवल एक बात को दूसरे से अलग करने भर के लिए नहीं है बल्कि अनेक तरह से बोलता हुआ भी है। वह कई बार पाठक को आत्मान्वेषण का अवसर देता हुआ दिखाई देता है तो कई बार भाव या अनुभूति को विकसित करता हुआ दिखाई देता है। कई बार वह भावो को

गहरा करता है, कई बार शब्दों की उपस्थिति से उत्पन्न होने वाली भाव सकुलता से बचाता है।

शमशेर की काव्य–भाषा मे एक गहरा लयात्मक तत्व विद्यमान रहता है। लय उनके काव्य संवेदना की एक गहरी आन्तरिक सत्ता है। वे लय की सूचना करते हैं और लय का आविष्कार करते हैं। लय मे से ही नये–नये अर्थो की सृष्टि होती है। साथ ही शमशेर की काव्य–भाषा में एक विचित्र प्रकार झझनाहट, जैसे उगॅुली से वीणा के तार छेड देने पर होता है, को चरितार्थ करने का प्रयास किया गया है। उनकी काव्य–भाषा अपने ऐन्द्रिय बोध में, अपनी झंकृतियों मे, बिजली की भाति अपनी कौध और प्रकाश में, अपने शब्दों की आवाज और गन्ध में सर्वथा मौलिक लगते हैं । जहॉ वे विल्कुल अभिधा के स्तर पर होते है, वहॉ भी उनकी कविता एक विशेष झंकार से भरी हुई होती है, जैसे 'वाम–वाम–वाम दिशा, 'समय साम्यवादी'।

शमशेर की रचना प्रकिया जटिल है और अभिव्यक्ति संकेतात्मक। इसीलिए उनके बिम्ब अधिकतर संकुल होते हैं। शमशेर ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय दोनों अनुभूतियों को अपनी रचनाओं में बिम्बों द्वारा प्रस्तुत करते हैं। उनके रचना संसार में शाम, समुद्र दिवस, सूर्य, आकाश, क्षितिज, नदी, धूप, लहरें इत्यादि बिम्बात्मक अभिव्यक्ति पाते हैं। साथ ही शमशेर के काव्य–भाषा की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि वह कभी–कभी चित्र बन कर सामने आती है। उसके भीतर बिम्ब या अनुभूति चित्र भाषा में बनकर अवतरित होती है। शमशेर ने भाषा की नजाकत का जो रूप अपनी कविताओं मे उकेरा है, वह उर्दू और हिन्दी दोनों का मिला–जुला समन्वित रूप है। उनकी कविताओं में उर्दू और हिन्दी के शब्द इतनी सहजता से एक साथ आते हैं कि रचना प्रकिया में यह भेद रह ही नहीं जाता है कि यह उर्दू का शब्द है या हिन्दी का।

इस शोध–प्रबन्ध के पाचवें अध्याय में भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य संवेदना और भाषिक संरचना पर प्रकाश डाला गया है। उनकी काव्य–संवेदना के विकास और प्रसार के बीच धसंकर जब हम उनकी काव्य–भाषा की सर्जनात्मक ऋजुता को पर्त–दर–पर्त उधेडकर देखते है तो हम न केवल अभिभूत होते हैं, बल्कि आश्चर्य में डूब जाते है। कैसे वे भाव दशाओं की विभिन्न सतहों को अपनी भाषा की अलग–अलग पर्तों में रचकर प्रस्तुत करते हैं उसका नमूना उनकी चन्द कविताओं में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। जब वे कहते हैं कि जिस तरह हम बोलते हैं, उसी तरह लिखकर एक कोई कवि बन सकता है तो हमें सहसा विश्वास नहीं होता। क्योंकि आधुनिक काव्यभाषा के सन्दर्भ में बार–बार हमें यही समझाया जाता रहा है कि कविता तभी फलीभूत होती है जब हम उसमें प्रतीक, बिम्ब और मिथक के तत्वों को सरल या जटिल तरीके से समाविष्ठ कर लेते हैं। किन्तु भवानी प्रसाद मिश्र ने इस सारी अवधारणा को ही अपनी काव्य–भाषा मे तोड दिया। भावनी प्रसाद मिश्र किस प्रकार शब्द के उस अर्मूत आयाम को निर्मित करते हैं जहॉ शब्द ही शब्दहीनता की स्थिति को प्राप्त कर लेता है और यह शब्दहीनता ही विशेष प्रकार की दूरगामी अनुगूॅजों को निर्मित करती है। इन्हीं अनुगूॅजों को हम उनकी 'गीत फरोश', 'सतपुडा के घने जंगल' या 'फूल लाया हूॅ कमल के' जैसी कविताओं में सुनते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र भाषा की ऋजुता को अपने जीवन की ऋजुता से प्राप्त करते है। जिसे साधना गहरे अनुशासन की मांग करता है और वह अनुशासन जीवन व्यवस्था से ही जन्म ले सकता है। इस अर्थ में भवानी प्रसाद मिश्र एक ऐसी ऋजु काव्य–भाषा के आविष्कर्ता रहे हैं, जिन्होंने भाषा के साथ–साथ अपने जीवन को भी ऋजु और मौलिक सच्चाइयों से संवलित किया है।

इस शोध–प्रबन्ध के छठें अध्याय में डॉ0 धर्मवीर भारती की काव्य–संवदेना और भाषिक संरचना पर प्रकाश डाला गया है। इन्होंने अपने निर्माण और विकास का पथ कतिपय गलियों से गुजर कर ढूँढ़ा है। वे ध्वंस, अनास्था, विघटन आदि के बीच सृजन की पुकार सुनते हैं। उनमे कवि कर्म की पूरी जागरूकता है। भारती की काव्य संवेदना का प्रथम सोपान रूपासक्ति और उद्दाम यौवन के मांसल गीतों का है। दूसरा सोपान उस आन्तरिक संघर्ष का है जहॉ कवि विराट जीवन के बीच दुःख दर्दों में गम्भीर अर्थ ढूँढता है। कवि के निर्माण और विकास का चौथा सोपान उनके जीवन दर्शन और चिन्तन के अनुरूप 'कनुप्रिया' और 'अन्धायुग' में दिखाई पडता है।

भाषा की धारावाहिकता अविछिन्न रूप से भारती की कविता में प्रवहमान है।संस्पर्शिता और प्रवहमानता की दृष्टि से भारती की काव्य भाषा बेजोड़ है। उनके मन में भाषा को लेकर कोई वर्जना का भाव नहीं है। न तो वे उर्दू और फारसी की शब्दावली से परहेज करते हैं। और न ही संस्कृत, तत्सम शब्दों से उन्हे कोई आपत्ति है। उनके सामने एक ही शर्त है कविता की लय और भाषा का प्रवाह। इस बात को वे ही पाठक अच्छी तरह समझेंगे जिन्होंने पहाड़ी नदियों में बहते हुए प्रशतर पिण्डों को आपस में रगड़–रगड कर सुघर और सुडैाल होते हुए देखा है। भारती की काव्य–भाषा की एक सघन विशेषता उनका बिम्ब विधान है। भारती ने अपने काव्य में जिस प्रेम, प्रणय, अभिसार, रूपासक्ति और प्रेमाकांक्षा के उद्याम आवेग के क्षणों को वाणी दी है उनके लिए यह आवश्यक भी हो जाता है कि वे बिम्बों का सघन संयोजन करते । भारती के बिम्बों में काव्यार्थ को प्रसंगानुकूल बनाने की अद्भुत क्षमता है। भारती की काव्य–भाषा की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी मिथकीय संवेदना है। काव्य भाषा में बिम्ब और प्रतीक की योजना तो महत्वपूर्ण होती ही है, किन्तु मिथकों का सटीक और साभिप्राय प्रयोग काव्य भाषा की उत्कृष्टतम्

विशेषताओ मे से एक है। भारती मिथकीय पात्रों के माध्यम से समकालीन समस्याओ से अपने को रूबरू करते हैं। ऐसा करते समय उनकी काव्य–भाषा में विचार और अनुभूति का ऐसा संगुफन हुआ है, जो विरले ही कवियों में दिखाई देता है। भारती की रचनाओं में अतीत केवल पुनरावलोकन मात्र नहीं है, बल्कि उनमें विचार पक्ष के ऐसे अनेक तत्वों का अन्तर्सगुंफन लाक्षित होता है, जिसने उन्हे विश्वयुद्धोत्तर ह्रासोन्मुख सभ्यता का दस्तावेज बना दिया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के सातवें और अन्तिम अध्याय में इस शोध–प्रबन्ध का निष्कर्ष उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

''दूसरा सप्तक के कवियों की काव्य-भाषा''

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल्0 उपाधि हेतु

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध
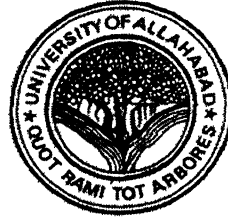
निर्देशक-

रामकमल राय

डॉ० राम कमल राय

(पूर्व प्राध्यापक)

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

शोध कर्ता-

तीर्थ राज राय

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

2002

प्राक्कथन

'दूसरा सप्तक' मे सकलित सातो कवि–भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, हरिनारायण व्यास और शकुन्तला माथुर अपने जीवन के अन्तिम क्षणो तक सृजनशील बने रहे। यद्यपि बाद के दोनो कवि हरिनारायण व्यास और शकुन्तला माथुर अपनी रचना–धर्मिता के माध्यम से कोई नया महत्वपूर्ण आयाम प्रस्तुत नही कर सके। फिर भी इनमे प्रारम्भ के दिनों में एक सम्भावना तो दिखी ही थी, जिसके नाते 'दूसरा सप्तक' मे वे अपनी जगह बनाने में सफल रहे थे। इनमे से एक मात्र जीवित कवि हरिनारायण व्यास आज भी रचनाशील बने हुए हैं।

नयी कविता अथवा 'दूसरा सप्तक' के कवियो की काव्य–भाषा का जब हम जिक्र करते हैं तो पुराने बहुत से मानदण्ड कोई अधिक अर्थ नहीं रखते। जैसे–अलंकार, रस, छन्द आदि। किन्तु पारम्परिक शब्दावली मे यदि हम कहे तो शब्द शक्तियो का एक सीमा तक उपयोग किया जाता है, जैसे– अभिधा, लक्षणा और व्यजना। छायावादी काव्य के सन्दर्भ मे तो इन शब्द शक्तियो का बहुत अधिक अर्थ था। किन्तु 'दूसरा सप्तक' तक आते–आते ये मानदण्ड पुराने और अप्रासगिक से हो जाते है। इन कविताओ को प्रतीक, बिम्ब और मिथक की शब्दावली में देखा परखा जाता है। इसमे भी सबसे अधिक सामर्थ्य बिम्ब की ही मानी जाती है।

'दूसरा सप्तक' के कवि इस अर्थ में विशिष्ट है कि इनमे से प्रत्येक की काव्य–भाषा दूसरे से काफी भिन्न है। नरेश मेहता की काव्य–भाषा में क्रमशः मिथकीयता बनती जाती है। प्राचीन भारतीय साहित्य के अनेक मिथकों का वे प्रयोग करते हैं, साथ ही उनकी काव्य–भाषा में एक प्रकार की प्रार्थनामयता और वानस्पतिक चेतना दिखती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनकी काव्य–संवेदना के परिसर

में डूबता–उतराता है। इसीलिए प्राचीन मिथक और बिम्ब उनकी काव्यभाषा के अभिन्न अग है। भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा, सरल, सीधी और प्रवाहमयी है, किन्तु उनकी व्यजनाएँ गहरी है। वे मिथको मे तो नही जाते, किन्तु अपने वर्तमान को प्रकृति और जीवन से निरन्तर समृद्ध करते हुए ऋजु भाषा का निर्माण करते है। रघुवीर सहाय की भाषा भी बहुत सरल, सीधी और अखबारी है। किन्तु उसमे भी गहरी व्यजनाएँ है और वर्तमान जीवन की कडवी सच्चाइयाँ उसमे बहुत ही सहज ढग से व्यजित की जाती है। शमशेर बहादुर सिह की भाषिक सवेदना बहुत जटिल है। उनकी काव्य–भाषा मे एक ऐसा इन्द्र जाल है, जिसे पाठक को अपनी चेतना मे उतारना बहुत सरल नही होता। उनकी काव्य–भाषा अपनी बिम्बात्मकता और झकृति के लिए जानी जाती है। इसमें एक रेशमी सलवटो की बुनावट होती है जो चेतना में बहती चली जाती है। भारती की काव्य–भाषा मे कही अवरोधक तत्व नही होता है। न तो उर्दू हिन्दी जैसा कोई भेद होता है और न ही तद्भव तत्सम का। शकुन्तला माथुर और हरिनारायण व्यास की 'दूसरा सप्तक' की कविताएँ स्तरीय है और उनकी भाषा भी अपनी विशिष्टताएँ लिए हुए है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के विषय, 'दूसरा सप्तक के कवियों की काव्य–भाषा', चयन से लेकर इसके पूरा होने तक, इस शोध–प्रबन्ध के निर्देशक और मेरे गुरूवर डॉ0 रामकमल राय द्वारा दिये सहयोग के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना अथवा कृतज्ञता व्यक्त करना मुझे औपचारिक–सा लग रहा है, क्योकि बिना उनके उचित निर्देशन के इस शोध–प्रबन्ध को पूरा करना मेरे लिए सम्भव ही नही था। हॉ, अपने विभाग के दो वरिष्ठ प्राध्यापक प्रो0 सत्यप्रकाश मिश्र और प्रो0 राजेन्द्र कुमार जी का मैं जरूर आभारी हूँ जिनका जाने–अनजाने सहयोग मुझे समय–समय पर मिलता रहा है। अपने मित्रो प्रवेश कुमार सिह, राजेश कुमार सिंह, आनन्द प्रकाश सिंह, उमेश सिंह, अजय त्रिपाठी और 'दादा' तथा घनश्याम

राय के प्रति भी मै आभार व्यक्त करना चाहूँगा जिन लोगो का प्रोत्साहन, इस शोध–प्रबन्ध के पूरा होने तक, बराबर मिलता रहा है। अपनी पडोसिन डॉ0 निशा श्रीवास्तव का भी मै आभारी हूँ जिनके रोज–रोज के तकाजे ने, इस शोध–प्रबन्ध के जल्दी पूरा होने मे कही न कही मदद जरूर की है। अपने एक और मित्र श्री उपेन्द्र कुमार पाण्डेय का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिनका न केवल मुझे प्रोत्साहन मिला बल्कि इस शोध–प्रबन्ध के लिए उनके द्वारा आर्थिक मदद भी की गयी ।

अपने पिता जी, श्री देवप्रभाकर राय के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना, महज औपचारिकता होगी। जिसके लिए मेरा अन्तर्मन गवाही नही दे रहा है। उनके द्वारा दिया गया प्रोत्साहन और इलाहाबाद के इस लम्बे प्रवास के दौरान अनवरत दी गयी आर्थिक सुरक्षा ने मुझे मानसिक रूप से तनाव मुक्त रखा, जिसके कारण ही यह शोध–प्रबन्ध पूरा हो सका। अपने परिवार के अन्य सदस्यो भैया, भाभी और छोटे भाई का भी आभारी हूँ, जिनका प्रोत्साहन बराबर मिलता रहा। मै अपनी जीवन–सगिनी श्रीमती शालिनी राय के प्रति विशेष आभार व्यक्त करना चाहूँगा, जिन्होनें न केवल इस शोध–प्रबन्ध के लिखने में मेरी मदद की बल्कि मुझे कई पारिवारिक जिम्मेदारियो से भी मुक्त रखा।

मैं राजेन्द्र कम्प्यूटर सेन्टर के पिन्टू का भी आभारी हूँ जिनके सहयोग–पूर्ण व्यवहार ने इस शोध–प्रबन्ध को तैयार करने मे काफी मदद की है।

इस शोध–प्रबन्ध के लिए अध्ययन सामग्री मैने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय और हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा इलाहाबाद सग्रहालय से भी प्राप्त की है, इसके लिए मै इन सस्थानों के कर्मचारियो को धन्यवाद देना चाहूँगा। बस इतना ही।

दिनांक –

15 10.2002

तीर्थराज राय

अनुक्रमणिका

अध्याय - 1

शताब्दी के तीसरे दशक के अन्त मे हिन्दी के कवियो मे छायावाद के भाव तत्व और रूप आकार दोनो के प्रति एक प्रकार का असतोष सा उत्पन्न हो गया था। और धीरे–धीरे यह धारणा दृढ होती जा रही थी कि छायावाद की वायवी भाव–वस्तु और उसी के अनुरूप अत्यन्त बारीक तथा सीमित काव्य–सामग्री एव शैली–शिल्प आधुनिक जीवन को अभिव्यक्त करने मे सफल नही हो सकते। नि·सर्गत· उसके विरूद्व प्रतिक्रिया हुई। भाव–वस्तु मे छायावाद की तरल अर्मूत अनुभूतियो के स्थान पर एक ओर व्यवहारिक सामाजिक जीवन की मूर्त अनुभूतियों की मांग हुई तो दूसरी ओर सुनिश्चित बौद्धिक धारणाओ का जोर बढा। और शैली–शिल्प मे अत्यन्त सूक्ष्म कोमल काव्य–सामग्री के स्थान पर विस्तृत जीवन की मूर्त–सघन काव्य–सामग्री को आग्रह के साथ ग्रहण किया गया। इसी को दूसरे शब्दो मे कहे तो – अब काव्य मे कल्पना का समारोह कम हो गया, आध्यात्मिकता क्षीण सी हो गयी, ईश्वर गायब हो गया, सस्कृतनिष्ठ भाषा के मोहबन्ध से भी काव्य क़ो दूर तक मुक्ति मिल गयी।

आरम्भ मे इस प्रतिक्रिया का एक समवेत रूप ही दिखाई देता था। कुछ ही वर्षों में इन कवियो के दो पृथक वर्ग हो गये– एक वर्ग सचेत होकर निश्चित समाजिक, राजनीतिक प्रयोजन से साम्यवादी जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति को अपना परम कवि कर्त्तव्य समझकर रचना करने लगा। दूसरे वर्ग ने सामाजिक राजनीतिक जीवन के प्रति जागरूक रहकर भी अपना साहित्यिक व्यक्तित्व बनाये रखा। उसने किसी राजनीतिकवाद का दायरा स्वीकार नही किया, बल्कि काव्य की वस्तु और शैली–शिल्प को नवीन प्रयोगों द्वारा आज के अनेक रूप, अस्थिर चिर–प्रयोगशील जीवन के उपर्युक्त बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया। पहले वर्ग को हिन्दी में प्रगतिवादी और दूसरे को प्रयोगवादी का नाम दिया गया।

प्रगतिवादी काव्य के उद्भव और विकास मे छायावाद की शून्य होती हुई व्यक्तिवादी वायवी काव्यधारा की प्रतिक्रिया तो थी ही साथ ही राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियॉ भी सहायक हुई थी। एक ओर भारतीय समाज मे उभरता हुआ जन सकट था तो दूसरी ओर रूस मे मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर स्थापित साम्यवाद था, जो वहॉ के विषम संकट और संघर्ष से गुजरे जन–जीवन को बल दे रहा था। भारतीय वृद्धिजीवी एक ओर अपने समाज मे उत्पन्न अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विसंगतियो और संकटो को देख रहा था, तो दूसरी ओर वह रूस के उस समाज को देख रहा था जो इन विसगतियो और सकटो से गुजर कर एक ऐसी व्यवस्था स्थापित कर रहा था जिसमें सामान्य जन–जीवन को महत्ता प्राप्त हो रही थी।

प्रयोगवादी कविता का मूल तत्व स्वाभवतः ही काव्य–विषयक प्रयोग अथवा अन्वेषण है। इस वर्ग के कवियों का विश्वास है कि जीवन की तरह ही काव्य भी एक चिर–गतिशील सत्य है, जिसकी वास्तविक साधना शोध, अन्वेषण एव प्रयोग है। अतएव वस्तु और शैली दोनो ही के क्षेत्रों मे ये काव्य के पूर्ववर्ती उपादानो को सन्देह की दृष्टि से देखते है और नवीन उपकरणो को आग्रह पूर्वक ग्रहण करते हैं। इसी प्रयोगवादी कविता के अगुआ रहे–अज्ञेय।

'प्रयोगवाद' शब्द का प्रयोग सबसे पहले नन्द दुलारे वाजपेयी वे अपने एक निबन्ध 'प्रयोगवादी रचनाएँ' में किया है। इस निबन्ध में मुख्यत 'तार सप्तक' की समीक्षा की गयी है। उन्होने लिखा है ''पिछले कुछ समय से हिन्दी काव्य क्षेत्र मे कुछ रचनाएँ हो रही हैं, जिन्हे किसी सुलभ शब्द के अभाव मे प्रयोगवादी रचना कहा जा सकता है।'' यद्यपि अज्ञेय जी ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में वाजपेयी जी का उत्तर देते हुए 'तार सप्तक' की रचनाओ को 'प्रयोगवादी' कहना स्वीकार नहीं किया है। उन्होने लिखा है– ''प्रयोग का कोई वाद नही है। हम वादी नहीं रहे, नही हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य

है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई भी वाद नहीं है, कविता भी अपने आप मे इष्ट या साध्य नही है। अत. हमे 'प्रयोगवादी' कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमे 'कवितावादी' कहना''।

('दूसरा सप्तक' 'भूमिका'. स0 अज्ञेय. पृष्ठ–6)

इसी 'भूमिका' में 'तार सप्तक' के कवियो पर लगाये गये एक और आरोप, कि इन कवियो ने साधारणीकरण का सिद्धान्त नही माना है, का उत्तर देते हुए उन्होने लिखा है कि– ''तारसप्तक' के कवियो पर यह आक्षेप किया गया कि वे साधरणीकरण का सिद्धान्त नही मानते। यह दोहरा अन्याय है। क्योकि वे न केवल इस सिद्धान्त को मानते है बल्कि इसी से प्रयोगों की आवश्यकता भी सिद्ध करते है।''

('दूसरा सप्तक'–'भूमिका'– पृष्ठ–8)

आगे वह भाषा और शब्द तथा उसके अर्थ के सम्बन्ध पर बात करते हुए लिखते है– ''जरा भाषा के मूल प्रश्न पर–शब्द और उस के अर्थ के सम्बन्ध पर–ध्यान दीजिए। शब्द में अर्थ कहॉ से आता है, क्यो और कैसे बदलता है, अधिक या कम व्याप्ति पाता है? शब्दार्थ–विज्ञान का विवेचन यहॉ अनावश्यक है, एक अत्यन्त छोटा उदाहरण लिया जाये। हम कहते है 'गुलाबी' और उससे एक विशेष रंग का बोध हमे होता है। निस्सन्देह इसका अभिप्राय है गुलाब के फूल के रंग–जैसा रग; यह उपमा उसमें निहित है। आरम्भ में 'गुलाबी' शब्द से उसे उस रंग तक पहुॅचने के लिए गुंलाब के फूल की मध्यस्तता अनिवार्य रही होगी, उपमा के माध्यम से ही अर्थ लाभ होता रहा होगा। उस समय यह प्रयोग चमत्कारिक रहा होगा पर अब वैसा नही है। अब हम शब्द से सीधे रंग तक पहुॅच जाते है; फूल की मध्यस्थता अनावश्यक है। अब उस अर्थ का चमत्कार मर गया है, अब हो अभिधेय हो गया है, और अब इससे भी अर्थ में कोई बाधा नहीं होती कि हम जानते हैं, गुलाब कई रंगो का होता है–सफेद, पीला, लाल

यहॉ तक कि लगभग काला तक। यह क्रिया भाषा में निरन्तर होती रहती है और भाषा के विकास की एक अनिवार्य क्रिया है। चमत्कार मरता रहता है और चमत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता रहता है। यो कहे कि कविता के सामने हमेशा चमत्कार की सृष्टि की समस्या बनी रहती है– वह शब्दों को निरन्तर नया सस्कार देता चलता है और वे सस्कार क्रमश सार्वजनिक मानस मे पैठ कर फिर ऐसे हो जाते है कि – उस रूप मे–कवि के काम के नहीं रहते। 'बासन घिसने से मुलाम्मा छूट जाता है।' कालिदास ने जब रघुवश मे कहा था–

"वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगत पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।"

इस बात को उन्होंने समझा था और इसीलिए वाक् मे अर्थ की प्रतिपत्ति की प्रार्थना की थी। जो अभिधेय है, जो अर्थ वाक् मे है ही, उस की प्रतिपत्ति की प्रार्थना कवि नही करता। अभिधेयार्थ युक्त शब्द तो वह मिट्टी, वह कच्चा माल है जिससे वह रचना करता है, ऐसी रचना जिसके द्वारा वह अपना नया अर्थ उस मे भर सके, उसमे जीवन डाल सके।"

('दूसरा सप्तक'.'भूमिका' पृष्ठ–9–10)

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे 'दूसरा सप्तक' में संकलित सातो कवियो की काव्य–भाषा के साथ ही उनकी काव्य सवेदना पर भी प्रकाश डालने की कोशिश की गयी है। इस कोशिश मे शोध–कर्ता कहॉ तक सफल हुआ, यह विवेच्य हो सकता है। इस शोध–प्रबन्ध में पाच कवियो रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, डा0 धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिह और भवानी प्रसाद मिश्र–पर पॉच अलग–अलग अध्याय मे उनकी भाषिक विशिष्ठताओं का विस्तार से अध्ययन किया गया है। यह आवश्यक नही है कि इन सबकी सारी की सारी विशिष्ठिता इस शोध–प्रबन्ध मे आ ही गयी हो, यद्यपि कोशिश यही रही हैं। 'दूसरा सप्तक' के शेष दो कवियों शकुन्तला माथुर और हरिनारायण व्यास पर अलग से कोई

अध्याय न देकर इसी प्रस्तावना मे ही आगे उनकी काव्य–संवेदना और भाषिक–विशिष्ठता पर प्रकाश डाला गया है। ऐसा करने के पीछे कोई पूर्वाग्रह नही रहा है बल्कि इन दोनो कवियो का सृजनात्मक फलक बहुत दूर तक न रहना, रहा है।

'दूसरा सप्तक' की 'भूमिका' मे अज्ञेय जी ने इन सातो कवियो की भाषिक सरचना को रेखाकित करते हुए लिखा है–''यद्यपि सब कवियो मे भाषा का परिमार्जन और अभिव्यक्ति की सफाई एक सी नही है और अटपटेपन की झाकी न्यूनाधिक मात्रा मे प्रत्येक मे मिलेगी, तथापि सभी को ऐसी उपलब्धि हुई है जो प्रयोग को सार्थक करती है। 'प्रयोग के लिए प्रयोग' इनमे से भी किसी ने नही किया है, पर नयी समस्याओ और नये दायित्वो का तकाजा सबने अनुभव किया है और उसी से सबको प्रेरणा मिली है। 'दूसरा सप्तक' नये हिन्दी काव्य को निश्चित रूप से एक कदम आगे ले जाता है और कृतित्व की दृष्टि से लगभग सूने आज के हिन्दी क्षेत्र मे आशा की नयी लौ जगाता है। ये कवि भी विरामस्थल पर नहीं पहुँचे है, लेकिन उनके आगे प्रशस्त पथ है और एक आलोकित क्षितिज–रेखा। गुप्त, 'प्रसाद', 'निराला', 'पन्त, महादेवी, 'बच्चन', 'दिनकर', इस सूची को हम आगे बढायेंगे तो निस्सन्देह 'दूसरा सप्तक' के कुछ कवियो का उल्लेख उसमे होगा। और, फुटकर कविताओ को लें तो, जैसा कि हम ऊपर भी कह आये है, एक जिल्द में सख्या मे इतनी अच्छी कविताएँ इधर के प्रकाशनों में कम नजर आयेगी।

('दूसरा सप्तक':'भूमिका': पृष्ठ–12)

'दूसरा सप्तक' मे सकलित प्राय· सभी कवियो ने अपने–अपने वक्तव्यो में अपनी कविता और उसकी भाषिक सरचना पर कुछ न कुछ कहा है भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने 'वक्तव्य' में लिखा है–''कवि और कविता के बारे में जितनी बाते प्रायः कही और लिखी जाती है, उनके आस–पास जो प्रकाशमण्डल खींचा

जाता है और उन्हें जो रोजमर्रा मिलने वाली आदमियो और उनकी कृतियो से कुछ अलग स्वभाव, प्रेरणाओ और सामर्थ्यो की चीज माना जाता है, वैसा कम से कम अपने बारे मे मुझे कभी नही लगा तो हो सकता है कि मै कवि ही न होऊँ। ....वर्ड्स्वर्थ की एक बात मुझे पटी कि 'कविता की भाषा यथा सम्भव बोल चाल के करीब हो।' तत्कालीन हिन्दी कविता की इस ख्याल से विल्कुल दूसरे सिरे पर थी। तो मैने जाने–अनजाने कविता की भाषा सहज ही रखी। ....'दूसरा सप्तक' की मेरी कविताएँ मेरी ठीक प्रतिनिधि कविताएँ नही है। जगह की तगी सोचकर मैने छोटी–छोटी कविताएँ ही इसमे दी हैं। 'आशागीत','दहन–पर्व', 'अश्रु और आश्वास', 'बधा सावन' और ऐसी अन्य लम्बी कविताएँ अगर पाठको के सामने पेश कर सकता तो ज्यादा ठीक अन्दाज उनसे लगता। बहुत मामूली रोजमर्रा के दु:ख–सुख मैने इनमे कहे हैं, जिनका एक शब्द भी किसी को समझाना नही पडता। "शब्द टप–टप टपकते है फूल से, सही हो जाते है मेरी भूल से।" बेशक 'भूल से' ही यह सब मेरे हाथों बन पड़ता है क्योंकि कभी दर्शन, वाद या जिसे टेकनीक कहते हैं, मैने नही सोचा। बहुत से ख्याल अलबत्ता मेरे हैं, मगर मै देखता हूँ कि ज्यादातर लोगो के ख्याल भी तो वही हैं–वे अमल भले ही उन ख्यालो के मुताबिक न करते हों। दर्शन मे अद्वैत, वाद मे गाधी का और टेकनीक में सहज–लक्ष्य ही मेरे बन जाये, ऐसी कोशिश है।"

('दूसरा सप्तक' 'वक्तव्य' पृष्ठ–21)

शमशेर बहादुर सिह अपने ऊपर पडे अन्य लोगों के प्रभावो की चर्चा करते हुए लिखते है–"आठवीं के कोर्स मे टेनिसन की 'लोटस ईटर्स' कविता थी, एक मजबूर मादक उदासी की चीज। डी0ए0वी0 कालेज देहरादून में पं0 हरिनारायण मिश्र ने पहले–पहल ॲगरेजी कविता के उदात्त सौन्दर्य से मुझे परिचित किया और शीघ्र ही टेनिसन मेरा आदर्श बन गया, और हाईस्कूल

पहुँचते–पहुँचते साथ ही साथ, इकबाल भी। तभी 'परिमल' और 'मतिराम ग्रन्थवाली' के बहाने हिन्दी के नये पुराने काव्य रस का कुछ स्वाद चखा। ठाकुर पर लिखी एडवर्ड टामसन की पुस्तक ने मेरे सामने कविता की जैसे एक दुनिया का द्वार खोल दिया। उस के बाद बहुत मुद्दत तक 'निराला' का 'रवीन्द्र कविता कानन' मेरी अत्यधिक प्रिय पुस्तक रही ।

'इलाहाबाद' युनिवर्सिटी में आया तो केदार, नरेन्द्र और वीरेश्वर का साथ मिला, साथ ही कविता की तरफ नया उत्साह। उस समय हमारे भावुक हृदयों में, मै समझता हूँ , पन्त और महादेवी की कविता एक तूफान की तरह आयी। सन् 33 मे मैने बडे परिश्रम से 'परिमल' को समझने के लिए नोट तैयार किये। हाली, इकबाल और फानी को खास शौक से पढा। गजले भी कहना शुरू की ...। एक बार क्लास में इलियट और कमिग्स की दो–एक मशहूर कविताएँ पढकर सुनायी गयी' खोखले लोग, लाल मोरचा। सन् 34 की बात है। उन्होने मुझे कविता में एक विस्तार, एक नयी युक्ति–सी और जीवन के नाटक तत्व का आभास दिया। टेकनीक में एजरा पाउण्ड शायद मेरा सबसे बडा आर्दश बन गया।''

('दूसरा सप्तक': पृष्ठ–83–84)

आगे इसी 'वक्तव्य' के 'पृष्ठभूमि' उपशीर्षक में अपनी कविता की भाषिक–सरचना और उसकी बनावट को स्पष्ट करते हुए वे लिखते है– ''अपनी कविता मे मेरी खास कोशिश यह रही है कि हर चीज की, हर भावना की जो एक अपनी भाषा होती है, जिसमें वह कलाकर से बातें करती है, उसको सीखूँ। इस तरह की कोशिश जहॉ–जहॉ भी कामयाब होती देख सका, मैने उससे असर लिया, ज्यादातर ॲगरेजी की मौजूदा कविता से, खास तौर से टेकनकी मे।

मेरी भावनाओं पर सबसे गहरा असर पडा है परिमल और अनामिका का। पन्त ने भी मुझे पहले–पहल कविता की भाषा दी। उर्दू की गजलियत और

उलझे हुए भावो की सपनो की–सी चित्रकारी और कुछ चलती हुई लयों और इधर आकर बात–चीत के लहजों और उसके उतार–चढाव को भी मैने अपनी कविता के रूप और छन्द का आधार बनाना चाहा है।"

('दूसरा सप्तक': 'वक्तव्य': पृष्ठ–85)

नरेश मेहता ने यद्यपि 'दूसरा सप्तक' के लिए लिखे अपने वक्तव्य मे अपनी भाषिक संरचना पर कोई खास प्रकाश नही डाला है। फिर भी खुद पर की गयी उनकी एक टिप्पणी से उनके कवि व्यक्तित्व और काव्य व्यक्तित्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। "नरेश मूलत· दो तरह का आदमी है: एक तो हर आदमी से दोस्ती करना, पर समाज से बहुत दूर रहना। दूसरे, हर चीज को पीछे छोड़कर चलते जाना, आगे और आगे। आज वह जिस जगह है, छोडकर चलते जाना, आगे और आगे। आज वह जिस जगह है, वह उसे जहर लगती है।

उसे दो बाते प्रिय रही है। पहली तो यह कि वह वैसा ही घूमता रहे जैसा कि उसने बचपन मे खानाबदोश लुहारो को अपने बैलो की घण्टियॉ बजाते हुए विन्ध्य की घाटियो मे घूमते हुए देखा। क्योंकि उसे एक सजे हुए कमरे से कहीं अधिक किसी तम्बू में केवल पडे रहना और कुहरे को देखना ज्यादा अच्छा लगता है। और दूसरी यह कि वह लिखे और, आग लिखे।"

('दूसरा सप्तक' – पृष्ठ–109)

रघुवीर सहाय अपने ऊपर पडे विल्कुल प्रारम्भिक प्रभावो की चर्चा करते हुए लिखते है– "साहित्य–अध्यापक पिता की धर्मभीरूता, सादगी और सहृदयता का मुझ पर गहरा असर पडा। यह मैं नहीं कह सकता कि कला के लिए अपनी रूचि मैंने किस एक व्यक्ति से पायी; मगर यह शायद सच है कि पिता की सादगी और केशव तथा 'हरिऔध' के साहित्य के प्रति उनकी अरूचि से मैने बहुत प्रेरणा पायी।"

('दूसरा सप्तक'–पृष्ठ–137)

आगे वे लिखते है–''आधुनिक कवियो मे 'अज्ञेय' और शमशेर बहादुर ने जिनकी बौद्धिक आत्मानुभूति और बोधगम्य दूरूहता किसी हद तक एक ही–सा प्रभाव डालती है मुझे अपनी आगामी रचनाओं के लिए काफी तैयार किया है।

कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहा जाये और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाये। वास्तविकताओ की ओर ऐसा ही दृष्टिकोण रहना चाहिए और यही जीवन को स्वस्थ बनाये रख सकता था। शमशेर बहादुर का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिन्दगी मे तीनो चीजो की बडी जरूरत है: आक्सीजन, मार्क्सवाद और अपनी वह शक्ल जो हम जनता मे देखते है. . . । मैने अपनी कविता के इस चरण तक पहुॅचते–पहुॅचते शैली में ताल और गति के कुछ प्रयोग कर पाये है। ताल को साधारण बोलचाल की ताल के जैसा बनाने में कुछ कविताओ मे जैसे 'अनिश्चय' और 'मुहॅ ॲधेरे' तथा 'दुघर्टना' मे थोडी बहुत सफलता मिली है। हलॉकि उस कोशिश में भी कही–कही उदॅू की गति की बॅधी हुई शैली का सहारा लेना पडा है। भाषा को भी साधारण बोलचाल की भाषा के निकट लाने की कोशिश रही है, मगर उसमे भी भाषा की फिजूल खर्ची करनी पडी ।''

('दूसरा सप्तक'– पृष्ठ–138)

डॉ0 धर्मवीर भारती अपने बारे में लिखते है–''लिखना वी0 ए0 से शुरू किया और छपना तो बहुत .लेट। दो चीजो की बेहद प्यास है। एक तो नयी–नयी किताबो की ओर दूसरी अज्ञात दिशाओ मे जाती हुई लम्बी, निर्जन, छायादार सडको की। सुविधा मिले तो जिन्दगी पर धरती की परिक्रमा देता जाऊॅ। मुक्त हंसी, ताजे फूल और देश–विदेश के लोक–गीत बहुत पसन्द हैं।''

('दूसरा सप्तक'–पृष्ठ–157)

आगे वे लिखते है– "भारती का मन कविता मे ही रमता है। क्योकि कविता के माध्यम से ही भारती आज की बेहद पिसी हुई संघर्षपूर्ण, कटु और कीचड में बिल बिलाती हुई जिन्दगी के भी सुन्दरतम् अर्थ खोज पाने मे समर्थ रहा है। कविता ने उसे अत्यधिक पीडा के क्षणों मे विश्वास और दृढ़ता दी है। कविता भारती के लिए शान्ति की छाया और विश्वास की आवाज रही है। बचपन मे जबसे उसने ॲगरेजी सीखी तभी से वह समुद्री कविताओ, साहसी नाविको और समुद्री लुटेरों की कहानियो के पीछे पागल रहता था।.. ... जब उसकी चेतना ने पंख पसारे तब छायावाद का बोल बाला था। उसे लगा कि कविता की शहजादी इन अपार्थिव कल्पनाओ, टेढे–मेढे शब्द जालो, अस्पष्ट रूपको और उलझे हुए जीवन–दर्शन की शिलाओ से बंधी उदास जल–परी की तरह कैद है और भारती को चाहिए कि वह उसे उन्मुक्त कर सर्वथा मानवीय धरातल पर उतार लाये ताकि वह फैली–फैली चॉदी की बालू पर आदम की सन्तानो के साथ बेहिचक आख मिचौनी खेल सके, उन के सीधे–साधे सुख–दु:ख, वासनाओं कामनाओ को समझ सके, उन्ही की बोली मे बोल सके। इसलिए भारती ने सबसे पहले लिखे सरलतम भाषा रग–बिरंगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मासलगीत, जो न तो मन की प्यास को झुठलाये और न उसके प्रति कोई कुण्ठा प्रकट करे, जो सीधे ढग से पूरी ताकत से अपनी बात आगे रखे। आदमी की सरल और सशक्त अनुभूतियों के साथ–साथ निडर खेल सके, बोल सके।

यो कविता में भारती के पास तूलिका है और वह तारों से रोशनी और फूलों से रंग चुरा कर बात–बात पर चित्र बनाती चलती है। शायद उस की कविता–शैली पिछले जन्म मे मिश्र देश की राजकुमारी रही होगी, जिनकी लिपि का हर अक्षर ही एक सार्वांग–सम्पूर्ण चित्र होता था। लेकिन भारती को इस बात का ध्यान रहता है कि उस के चित्र आपस में उलझने न पाये और कुल

मिलाकर अपनी बात को पूरे प्रभाव के साथ रखे।... . ... भाषा के प्रश्न को भारती ने अधिक महत्व नही दिया। भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिए, बस। न तो पत्थर का ढोका बनकर कविता के गले मे लटक जाये और न रेशम का जाल बनकर उसकी पॉखों मे उलझ जाये।

('दूसरा सप्तक'—पृष्ठ—158, 59—160)

शकुन्तला माथुर अपनी कविता और उसकी भाषिक सरचना को स्पष्ट करती हुई लिखती है— "बचपन से तुकबन्दी और गाने लिखने का शौक था, जिनकी सार्थकता पारिवारिक समारोहो तक ही रही। आरम्भकाल की कुछ रचनाएँ साप्ताहिक 'अर्जुन' तथा अन्य छोटे—मोटे पत्रो मे अनजाने ही प्रकाशित करा दी थी। अपने को कवि तथा अपनी रचनाओ को काव्य मानने की गलती बहुत समय तक नहीं की। आज भी कवि की पदवी स्वीकार करने में अत्यधिक सकोच है—कुछ अजीब—सा लगता है।"

('दूसरा सप्तक'—पृष्ठ—43)

आगे वे लिखती है—"काव्य रचना मैने अपने ही आप को सन्तुष्ट करने के लिए की थी—एकदम स्वान्तः सुखाय। इसलिए न उसमे किसी विशेष विचार—धारा, आर्दश, टेकनीक, साहित्यिकता, भाषा और भावना की कलात्मकता का विचार उठा, न मुझे प्रचलित विवादो का दृष्टिभेद ही हुआ। इसी कारण सम्भव है कि मेरी कविताओ मे काव्य के बहुत से प्रतिष्ठित गुण न हो जैसे—विचारों की गरिमा अथवा छन्द और तुक इत्यादि की सजावट। बहुत—सी रचनाओ में मनमाने छन्द हैं; मनमानी गति है, मनमाना सगीत है, प्रतिष्ठित रीति के अनुसार यह कहिए की नही है। मैने जो कुछ जैसा मन मे आया लिखा है, नियमो का कोई विचार ही उत्पन्न नही हुआ, इसीलिए मेरी सारी रचनाएँ एक प्रकार से कविता द्वारा अपने को व्यक्त करने का लम्बा प्रयोग हैं।........ कवि की आकांक्षाएँ भावनाएँ इतनी विस्तृत हो कि उनकी सीमा मे जन—जन की

भावनाएँ आ सके, यह तभी सम्भव है जब वे भावनाएँ उस के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की आवाज बनकर निकले, ख़ोखले प्रचार का आधार लेकर नही। वर्ना ऐसी कविता फूहड होगी, उस से तो पैम्फ्लेटो का गद्य ही बेहतर है।"

('वक्तव्य'–'दूसरा सप्तक'– पृष्ठ–44–45)

अपने इसी 'वक्तत्य' के प्रारम्भ में वे अपनी कविता की बुनावट को स्पष्ट करते हुए लिखती है– "यहॉ मैं घर मे बैठे ही भॉति–भॉति के नगरो , रगीन भवनो ,क्लबो, नर नारियों, तेजी से चलते जीवन से लेकर अंधेरी तग गलियो और सुनसान गॉवों तक का चित्र उतार कर मन भर लेती हूॅ। पूॅजीपति के माल–गोदामो से लेकर मजदूर, कुली, खटबुना, लोहार, ठेलेवाले तक के जीवन मे झाक लेती हूॅ। काव्य का माध्यम मैने इसीलिए अनायास अपना लिया और इसे अपना कर मुझे इतना सुख मिला कि मेरे शेष अभावो की पूर्ति हो गयी।"

('दूसरा सप्तक'–पृष्ठ–44)

यद्यपि कवियत्री ने अपने को कवि मानने से इकार किया है। किन्तु जब हम उनकी कविताओं को गहराई से पढते है, तो 'वक्तव्य' मे दी गयी, उनकी अपनी काव्य संवेदना की पृष्ठभूमि झूठी पडने लगने लगती है। पाठक के सामने एक ऐसी सर्जनात्मक काव्य सवेदना का परिदृश्य उभरकर आता है, जिससे वह अभिभूत हुए बिना नही रह पाता। जब पाठक उनकी काव्य–भाषा की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति की परत–दर–परत खोलते हुए चलता है तो उसे एक अलग तरह की ही अनुभूति होती है। जिसका नमूना उनकी कुछ कविताओं से प्रस्तुत किया जा सकता है। उनकी एक कविता है– 'लीडर का निर्माता'।

'लीडर' जो शोषक बन बैठा है–

"सजा है

रेशम के पर्दों से ड्राइंग रूम

सोडे से , फिनील से

और गरम पानी से

धुल रहे बाथरूम।

टावेल रूँए का हाथ में

लाण्ड्री धुला, गोरा–

कोठी से निकल रहा बैरा।

चपरासी कसे बेल्ट,

सेक्रेटरी लिये डायरी,

गेट पर कार खडी,

लोगो का इन्तजार–

कौन आ रहा?

लीडर आ रहा!

('लीडर का निर्माता' ''दूसरा सप्तक' पृष्ठ–56)

प्रस्तुत कविता यद्यपि पचासो वर्ष पहले लिखी गयी थी लेकिन आज जबकि संसद मे 'लीडर' एक दूसरे से हाथा–बाही तक कर लेते है, उनका सटीक चित्र खीचती है। एक सामान्य जन के मन में आज के 'लीडर' की जो छवि बनी है, वह लगभग यही है जिसको माथुर जी ने अपनी कविता मे वाणी दी है। इस कविता को पढते हुए ऐसा लगता है, मानो एक कोई सामान्य व्यक्ति किसी 'लीडर' की रहन–सहन देखकर चमत्कृत हुआ हो और किसी अन्य व्यक्ति से उसका वृतान्त सुना रहा है। सामान्य बात–चीत मे अंग्रेजी के जिन शब्दो का हम बडे धडल्ले से हिन्दी मे प्रयोग कर लेते हैं, उन्ही शब्दो में से 'ड्राइंग रूम', 'टावेल', 'बेल्ट', सेक्रेटरी' जैसे शब्दो का प्रयोग करके कवियत्री ने अपनी कविता का ढाँचा खडा किया है। उनकी एक कविता है–''केसर रंग रंगे ऑगन'। जो बिल्कुल दूसरे ही धरातल पर लिखी गयी है। इसमे एक तरह के नैसर्गिक सौन्दर्य की सृष्टि की गयी है–

"सुन्दरियों के गोल बदन

लिपटे गुलाल से

ज्यो सूरज पर सन्ध्या–बादल

जोर जमा खीचे पिचकारी

मुरकी जाये नरम कलाई

छोड फुहारे रग सब डाले

बजे चूडियॉ

फिसले साडी

मसल गये रंग

मसल गये तन

मसल गयी अब मूठी गोरी

किरण उतर कर नभ से आयी

आज खेलने को ज्यो होरी।"

('केसर रग रॅगे ऑगन', 'दूसरा सप्तक'; पृष्ठ 50)

प्रस्तुत काव्य पंक्तियों मे माथुर जी ने होली खेलते हुए युवतियो का वर्णन बडे ही तारूण्य बिम्बों से किया है। सुन्दरियो के गुलाब से लिपटे हुए गोल बदन को कवियत्री ने 'ज्यो सूरज पर सन्ध्या बादल' के बिम्ब से बाधा है। शाम के सूरज को बादल जब ढक देता है तो उसकी ललाई उन बादलो से झलकती है गुलाल से सने हुए युवतियों के गोल बदन कुछ ऐसा ही आभास दे रहा है। होली खेलते समय तन की सुध नही रह जाती। 'कलाई का मुरकना', चूडियों का बजना', 'साडी का फिसलना'– एक होली का वातावरण ही उपस्थित हो गया है। इस होली के दृश्य को देखने से ऐसा लगता है मानों आकाश से सूर्य की किरणें होली खेलने के लिए उतर आयी हैं। उनकी एक कविता

है–'जिन्दगी का बोझ। जो हिन्दी साहित्य का विश्लेषण करती हुई मालुम पडती है–

'रेल के डिब्बे मे
छोटे मे छोटा
बडे मे बडा है
मानवो मे भेद
एक कश खीचता है
सिगरेट दाब कर
छोटे से कहता
गेट डाउन डेम'
x x x
चला जा रहा
हिन्दी साहित्य
रेल में बैठ
दौड़ती कहानी
क्वॉरियों –सी
घिसटे लेख भी
पंगु–से, झोली फटी, टुकडे विखर रहे।'

('जिन्दगी का बोझ'·'दूसरा सप्तक': पृष्ठ–54–55)

यह पूरी–पूरी की कविता हिन्दी साहित्य का पडताल करती हुई मालुम पडती है। एक रेल के डिब्बे मे मुसाफिर इकट्ठे बैठे है। एक ही साथ यात्रा कर रहे है– चाहे वह छोटा हो या बडा। फिर भी बडे–छोटे का भेद साथ–साथ चल रहा है। बडा छोटे से कहता है–'गेट डाउन डैम।' हिन्दी साहित्य की दयनीय स्थिति का भी बड़े विचित्र ढग से वर्णन किया गया है जिस प्रकार रेल मे सभी

छोटे–बडे एक साथ चलते हैं उसी प्रकार हिन्दी साहित्य चाहे वह स्तरीय हो या निम्न स्तरीय, रेल की तरह दौड रहा है। जिसमे 'क्वारी–सी कहानी' और 'घिसटे लेख' साथ–साथ चल रहे है। यहॉ कवियत्री ने एक अलग तरह की भाषिक सरचना निर्मित की है जो कुछ–कुछ व्यग्य का तेवर लिए हुए है।

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक क्षणो को याद करते हुए कवि हरिनारायण व्यास लिखते है– "कविता की ओर बचपन से रूचि रही। मुझे किरानी की वह दुकान अभी तक याद है, जिस पर बैढकर रात को देर तक गॉव की किसी भी घटना या किसी भी व्यक्ति को लेकर तुकबन्दियॉ सुनाया करता था। मामा पं0 गोपी वल्लभ उपाध्याय के बौद्धिक प्रभाव से साहित्य की ओर झुका, फिर उज्जैन मे बन्धु गजानन मुक्तिबोध और गुरूवर प्रभाकर माचवे के सम्पर्क से कवि जीवन को चेतना प्राप्त हुई। गिरिजा कुमार माथुर का सहवास भी मेरे जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है।"

('दूसरा सप्तक'–पृष्ठ–63)

आगे वे कविता के बारे मे लिखते है–'कविता अपनी विशाल अमूर्तता के कारण समाज का व्यापक अनुभूतियों को स्पर्श करने की, उन्हें प्रेरित करने की क्षमता रखती है। इसी से कविता मे चिरस्थायित्व और सर्वदेशीयता एव सर्वलोप्रियता होती है। किन्तु सामाजिक विकास अथवा वातावरण का अन्तर भी उसको नया रूप देने का प्रधान कारण बन जाता है। समाज के विकास से मन की अनुभूतियों को भी विस्तार मिलता है। और मन का विस्तार अपनी अभिव्यक्ति के लिए भाषा में तथा अभिव्यक्ति शैली में भी नयापन जोडता है। नये शब्द, नये छन्द और अभिव्यक्ति के लिए नये प्रयोग, कवि के लिए लाचारी हो जाती है। अनुभूतियो का लावा जब पिघल कर फूट पडने को उतारू हो जाता है तो फिर प्रचलित मान्यताएॅ अपने आप टूट पड़ती है और नयी कविता नये सगीत मे अवतरित होने लगती है। नयी कविता के लिए नये छन्द उसके

बन्धन नही बल्कि उसकी सुविधा होती है, अनुभूति का आकार देने का एक सरल और स्वाभिक मार्ग। इसलिए नये शब्द, और पुराने शब्दो के नये अर्थ, नयी अनुभूतियों की नयी मूर्तियॉं होती है, जिन का जन्म सामाजिक व्यक्तित्व से होता है। .. मेरी मान्यताऍः

1. कविता के प्रतीक यथासाध्य जीवन के सान्निध्य से लिए जाने चाहिए। प्रकृति स्वय सौन्दर्य की प्रतिमा है। भारतीय कृषक के लिए वह एक वरदान है जो कविता के अन्तर्वाह्य स्वरूप के निखार में योग दे सकता है।
2. भाषा जीवन और समाज का एक प्रबल शस्त्र है, किन्तु उसे जीवन से अलग हो कर नहीं, जीवन मे ही रहना है। यदि कविता की भाषा दुर्बोध रही तो उस का कर्म– अर्थात् लडने मे मनुष्य का सहायक होना– अधूरा ही रह जाता है। इसलिए ग्राम–गीतो के शब्द और लय मुझे प्रिय है।
3 पुरानी मान्यताओं, पुराने शब्दो, पुरानी कहावतो को नये अर्थ से विभूषित कर के कविता मे प्रयोग करने से पाठक की अनुभूतियों को छूने में सहायता मिलती है।

कविता एक सपनो का संसार है। और यह संसार यदि नये जीवन के क्रीडा, नये जगत् की रगीनी से सिक्त हो तो कवि का कर्म और उसका सामाजिक दायित्व सार्थक हो जाते हैं।"

('दूसरा सप्तक':'वक्तव्य'·पृष्ठ–65–66)

जैसा कि इन्होंने अपनी 'मान्यताऍ में स्वीकार किया है कविता के प्रतीक यथासध्य जीवन के सान्निध्य से लिए जाने चाहिए'– का पूर्णतया निर्वाह करने की कोशिश की है। उनकी एक कविता है– 'उठे बादल झुके बादल'। पूरी की पूरी कविता मानों सूखे से त्रस्त पृथ्वी की कहानी कह रही हो–

"उधर उस नीम की कलगी पकडने को झुके बादल।
नयी रगत सुहानी चढ रही है

सब के माथे पर।

उडे बगुले, चले सारस,

हरस छाया किसानो मे।

बरस भर की नयी उम्मीद

छायी है बरसने के तरानों मे।

बरस जा रे, बरस जा ओ नयी दुनिया के

सुख सम्बल।

पडे है खेत छाती चीर कर

नाले–नदी सूने।

विलखते दादुरो के साथ सूखे झाड

रूखे झाड।

हवा बेजान होकर सिर पटकती

रो रही सर सर।

जमीं की धूल है बदहोश

भूली आज अपना घर।

x x x

खडी है सिर पे लिए गागर

तुम्हारी इन्तजार में

दरद करती कमर, दिल कापता है

बेकरारी मे।

जहॉ की बादशाही भी जहॉ पर

सिर झुकाती है

उन्ही कोमल किशोरी का

दुखाकर दिल

कभी रस ले सकोगे क्या अरे दिल?

उठे बादल, झुके बादल।

('उठे बादल, झुके बादल' 'दूसरा सप्तक'· पृष्ठ–70,71)

प्रस्तुत कविता मे कवि ने 'वर्षा न होने' के की स्थिति का अत्यन्त कुशलता से वर्णन करता है। सारे–के–सारे प्रतीक प्रकृति से ही लिये गये है। बादलो मे वर्षा की एक हल्की सी आभा दिखाई दे रही है, जिसके कारण वे थोडा सा झुक गये है। कवि को लगता है कि ये झुके हुए बादल 'नीम की कलगी' को पकडने के लिए झुक रहे हैं। 'नीम की कलगी' से कवि का तात्पर्य उम्मीद की नयी किरणो से है। जिस प्रकार नीम मे नयी कलगी है उसी तरह किसानो में भी उम्मीद एक नयी किरण पैदा हो गयी है। वह बादल से कहता है कि 'ओ नयी दुनिया के सुख सम्बल' बरस जाओ, ताकि पूरी दुनिया में आशा की एक नयी किरण जागृत हो जाये। पानी के अभाव का बडा ही सुन्दर वर्णन कवि ने किया है। गॉव में सूखे की स्थिति मे सारे तालाब और पोखरे सूख जाते है। ऐसी स्थिति मे गांव की किशोरियॉ पानी लेने जॉय तो कहॉ जायॅ। किशोरियॉ सिर पर गागर रखे पानी का इन्तजार कर रही हैं। कवि ने बादल को नायक के रूप मे चित्रित किया है। वह कह रहा है कि यदि नायिकाऍ दुखित रहेंगी तो नायक रस ले सकेगा क्या? यहॉ ग्रामीण परिवेश से लिए गये बिम्बों और प्रतीको का सघन प्रयोग है। कवि की एक दूसरी कविता है–'नशीला चॉद'।

''नशीला चॉद आता है।

नयापन रूप पाता है।

सवेरे को छिपाती रात अचल में,

झलकती ज्योति निशि के नैन के जल मे

मगर फिर भी उजेला छिप न पाता है।

बिखर कर फैल जाता है।

तुम्हारे साथ हम भी लूट ले ये रूप के गजरे

किरण के फूल से गूँथे यहॉ पर आज जो विखरे।

इन्ही मे आज धरती का सरस मन खिलखिलाता है।"

('नशीला चाद'·'दूसरा सप्तक'–पृष्ठ–71)

प्रस्तुत काव्य पक्तियो में कवि का एक दूसरा ही भाषिक तेवर दिखाई देता है पिछली कविता मे कवि ने जहॉ प्रकृति के कूर रूप को वाणी देता है वही इस कविता में प्रकृति को सौन्दर्य की प्रतिमा के रूप मे स्वीकार करता है। यहॉ प्रकृति के माध्यम से प्रेम जैसी मासल अनुभूति को प्राकृतिक बिम्बो के माध्यम से चित्रिति किया गया है। 'नशीला चाद आता है, नयापन रूप पाता है' से आधुनिकता का स्वर गुन्जरित हो रहा है, साथ ही नव–विकास और नव–विश्वास का संचार भी हो रहा है। रात अपने अचल मे सवेरे को छिपाना चाह रही है लेकिन सवेरा है कि वह छिप ही नहीं रहा है। यहॉ कवि ने जिस भाषिक संवेदना का विकास किया है, उससे कोई भी पाठक चमत्कृत हुए बिना नही रहता है।

व्यास जी कविताओं में प्राकृतिक उपादनों की झलक–जगह–जगह मिलती है। उनकी कविताओ के बिम्ब और प्रतीक सबके सब प्रकृति–प्रदत्त है, जिनका अवगाहन पाठक जगह–जगह करता हुआ चलता है।

अध्याय-2

नरेश मेहता : औपनिषदिक बिम्बलोक की भाषा

"सप्तको और नयी कविता की विशाल सृजन भूमि पर जो कुछ विशिष्टतम कवि व्यक्तित्व अकुरित, पल्लवित एवं विकसित हुए तथा अपने पुष्प गन्ध एवं फल सम्पदा से हिन्दी जगत को परितप्त एव परिपूर्ण किये, उनमे एक विशिष्ट नाम श्री नरेश मेहता का रहेगा। जिन परिस्थितियो मे श्री नरेश मेहता का जन्म एव प्रारम्भिक विकास हुआ वे अपने आप में इतनी वैविध्यपूर्ण एवं तीखी है कि निश्चय ही उनकी आच मे तपकर कोई विराट व्यक्तित्व ही निकल सकता था" ।

('नरेश मेहता· कविता की उर्ध्वयात्रा'– डॉ0 राम कमल राय– पृष्ठ–17)

कवि की अपने व्यक्तित्व पर स्वय की टिप्पणी है– "नरेश मूलत दो तरह का आदमी है एक तो हर आदमी से दोस्ती करना, पर समाज से दूर रहना। दूसरे, हर चीज को पीछे छोडकर चलते जाना, आगे और आगे। आज वह जिस जगह है, वह उसे जहर लगती है। उसे दो बातें प्रिय रही है। पहली तो यह कि वह वैसा ही घूमता रहे जैसा कि उसने अपने बचपन में खानाबदोश लुहारो को अपने बैलो की घण्टियॉ बजाते हुए विन्ध्य की घाटियों मे घूमते हुए देखा। क्योकि उसे एक सजे हुए कमरे से कही अधिक किसी तम्बू में केवल पडे रहना और कुहरे को देखना ज्यादा अच्छा लगता है। और दूसरी यह कि वह लिखे और, आग लिखे।"

('दूसरा सप्तक'– स0 अज्ञेय– पृष्ठ 109)

स्वय की इस टिप्पणी से श्री नरेश मेहता के कवि व्यक्तित्व और काव्य व्यक्तित्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। किसी भी कवि व्यक्तित्व पर उसके परिवेश का प्रभाव अनिवार्य है । कवि का एक निजी जीवन होता है, जिसमें उसका प्रेम, सघर्ष, पीडा तथा सकल्प विकल्प होते हैं। अपने जीवन के अनुभवो और अनुभूतियो से जुडकर या युक्त होकर वह सृजन करता है। वास्तव मे रचनाकार रचना करते हुए अनुभूति को ही रूपायित करता है। रचनाकार के

दायित्व के विषय मे कवि नरेश मेहता का अपना दृष्टि कोण है कि– "बिना भोगे कृति रचना नहीं हो सकती। ऐसा भोगना सुन्दरतम् के साथ–साथ विकृतता के साथ भी करना होता है। रचना प्रक्रिया के स्तर पर सुन्दर और विकृति मे कोई भेद नही होता। इसलिए कलाकार का दायित्व वस्तुत· अपने और रचना के प्रति सम्भव हो सकता है। यह बात दूसरी है कि प्रकारान्तर में वह अन्य के प्रति भी दायित्व पूर्ण हो जाये। इसीलिए कला को मूलत· असग होना चाहिए।"

(नरेश मेहता· 'प्रथम फाल्गुन' पृष्ठ–133)

काव्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कि कवि ने अपने एक सकलन 'अरण्या' की भूमिका मे लिखा है–" काव्य का स्थान समस्त वैचारिक सत्ता में न केवल सर्वोपरि है, बल्कि अपनी भाववाची सृजनात्मक प्रवृत्ति के कारण उसे परमपद भी कहा जा सकता है। अन्य वैचारिक सत्ताएँ, भले ही वे धर्म, दर्शन, विज्ञान या अध्यात्म की ही क्यो न हो, भाववाची सृजनात्मक न होने के कारण वे किसी न किसी कारण से सीमाएँ है। इस अर्थ में काव्य ही एक मात्र निर्दोष सत्ता है। . .. .. काव्य ही शब्द शक्ति और प्राण शक्ति दोनो की पराकाष्ठा है। काव्य न तो विज्ञान की पदार्थिक खण्ड दृष्टि है और न ही अध्यात्म की अनासक्त तत्वभाषा और योग मुद्रा। यदि काव्य की कोई मुद्रा सम्भव है तो वह अर्धनारीश्वर जैसी ही होगी। लग्न में जिस प्रकार 'मिथुन' और राशियों मे जिस प्रकार 'कन्या' है, प्रतीति और अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे वही स्थिति काव्य की है। कहा जा सकता है कि सृष्टि, सृष्टि का कारण और सृष्टि की क्रिया का यदि कोई नाम सम्भव है तो वह काव्य है।

('काव्य·एक शब्द यज्ञ' : 'अरण्या': पृ0–9)

भाषा को लेकर कवि की दृष्टि को हम उन्ही के शब्दो मे देखें–" प्रायः तो भाषा के स्तर पर ही अधिकांश कवि काव्य–श्रोता एवं पाठक काव्यात्मकता

की तलाश मे रहते हैं । कितने जानते है कि काव्य, भाषा को शब्द और अर्थ से मुक्ति दिलाने की प्रक्रिया है। भाषा के बन्धन का नही मुक्ति का नाम काव्य है। शब्द मे निहित अर्थ और सस्कार को जब तक काव्य, जाग्रत नही करता, तब तक वह भाषा या शब्द की उपरी सतह शब्दता पर ही टकराता रहेगा। कठिन भाषा या सरल भाषा, शब्द की शब्दता के ही नाम है। काव्य में शब्द और अर्थ का प्रयोग उसके भोक्ता कवि और श्रोता दोनो को ही शब्द और अर्थ से मुक्त होने के लिए होता है। काव्य, भाषा और अर्थ इन तीनों से असंग मत्रात्मकता ही शुद्ध काव्यात्मकता है। जिस प्रकार अग्नि, काष्ठ और हविष्य जन्मा होने पर भी वह न लकडी है और न हविष्य। उसी प्रकार काव्य शब्द और अर्थ जन्मा होने पर भी वह न शब्द है न अर्थ।"

('भूमिका'–'प्रवाद पर्व'– पृष्ठ–9)

कवि का उदाहरण उसके भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण को काफी दूर तक साफ करता है। उसकी दृष्टि मे काव्य भाषा को शब्द और अर्थ से मुक्ति दिलाने की प्रकिया है। अर्थात श्रेष्ठ और सफल काव्य तब चरितार्थ होता है जब काव्य का रचयिता और उसके श्रोता–पाठक शब्द और अर्थ की सीमा का अतिकमण करके उस आनन्द की भूमि पर पहुॅच जाये जहॉ शब्दार्थ की सत्ता की अनुभूति भी नही रह जाय। काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर शायद इसीलिए कहा गया है।

सर्व प्रथम नरेश मेहता की कविताएं सकलित रूप से हमें 'दूसरा सप्तक' मे ही प्राप्त होती है। इसमे उनकी कुल दस कविताए संकलित हैं। नरेश मेहता की इन कविताओ को नव्यतर रचना शैली द्वारा सुव्यवस्थित कविताएँ कहा जा सकता है। इन कविताओ मे उनके प्रकृति प्रेम और प्रगतिशीलता के दर्शन होते है। इन रचनाओ की चिन्तन भूमि व्यापक व ऊँची है। 'किरन घेनुएँ; 'उषस: 'अश्व की वल्गा' में न केवल वैदिक बिम्बो का सुन्दर प्रयोग हुआ बल्कि

शब्दावली भी वैदिक है। इनमे सबसे लम्बी कविता 'समय देवता' है जिसमे प्रकति प्रेम, प्रगति शीलता और शिल्प चेतना तीनों एक साथ परिलक्षित होती हैं। अन्य रचनाओ मे भारतीय संस्कृति के प्रति लगाव जीवन के प्रति अटूट आस्था, प्रकृति के प्रति गहन आकर्षण तथा जीवन के प्रति यर्थाथवादी दृष्टिकोण आदि विशेषताएँ देखी जा सकती है।

"समय देवता! आज विदा लो,
किन्तु तुम्हारे रेशम के इस चमक वस्त्र मे
मिट्टी का विश्वास बांधकर
भेज रहा हूँ।
मेरी धरती पुष्पवती है,
और मनुज की पेशानी के चरागाह पर दौड रही है तुफानो की नयी हवाएँ।"

('समय देवता': 'दूसरा सप्तक'· पृष्ठ–133)

'दूसरा सप्तक' मे संकलित 'समय देवता' शीर्षक कविता की इन अन्तिम पक्तियो मे कवि की स्वस्थ मानवतावादी चेतना का स्वर मुखरित होता है। इन आशावादी स्वरो में समाज के लिए उसकी आस्था की उत्कट आंकाक्षा दिखाई देती है।

'बनपाखी सुनो (1957) कवि का प्रथम स्वतन्त्र काव्य सकलन है। इसमें कुल 27 कविताएँ सग्रहीत हैं । इस सग्रह की लगभग सभी कविताएँ प्रकृति प्रधान है। इन कविताओ में कवि कभी बदली का वर्णन करता है। तो कभी मेघा का कभी वर्षा का, तो कभी डाकती सध्या का । प्रकृति का विभिन्न रूपो मे वर्णन इस संग्रह में मिलता है। 'ये हरिण सी बदलियाँ' 'मालवी फाल्गुन' 'मेघ पाहुन द्वारे' 'पीले फूल कनेर के' 'तथा मेघ से पहले' आदि कविताओ मे प्रकृति के माध्यम से रूमानी भावो को भी अभिव्यक्ति मिली है।

हम मिले थे सॉझ थी, तट था यही थी कदलियॉ।

थी घिरी उस सॉझ कबरी हरिण सी बदलियॉ।।

('ये हरिण सी बदलियॉ' 'बन पाखी सुनो' पृष्ठ–10)

'बन पाखी सुनो' सग्रह मे सकलित ' ये हरिण सी बदलियॉ' शीर्षक कविता की इन पक्तियों में आकाश मे घिर आयी बदली को देखकर कवि के हृदय पटल पर अचानक वो सन्ध्या उभर आती है, जो उसने अपनी प्रेमिका के साथ गोमती के तट पर बितायी थी। इस सग्रह मे कवि ने भाषा और शिल्प के घरातल पर नई शब्दावली का प्रयोग किया है। नये उपमान, नये बिम्ब तथा प्रतीको को वैयक्तिक भावना से अनुरजित किया है। कुछ कविताओ में हिन्दी और बगला का समन्वय भी है।

'बोलने दो चीड को' को कवि नरेश मेहता के काव्य–विकास का दूसरा आयाम कहा जा सकता है। यह 1961 में प्रकाशित हुआ था। इसमें कुल 27 कविताऍ सकलित है। 'बोलने दो चीड को' मे कवि का प्रकृति सौन्दर्य शब्द–शिल्प तथा स्वस्थ सामाजिकता की ओर अधिक आकर्षित है। लेकिन कही–कही व्यंग्य का पुट भी है। यहॉ तक आते–आते कवि का चिन्तन–बोध गहराने लगा था। अब कवि को यह आभास होने लगा था कि जो कल तक अनाम व उपेक्षित रहा है, वही आज स्वीकारा जा रहा है। शीर्ष बन्ध मे कवि ने स्वयं स्वीकार किया है – ''प्रत्येक नयी अभिव्यक्ति को आरम्भ मे विरोध सहना ही होता है, लेकिन बर्चस्व वरेण्य बनकर ही रहता है। कल तक, आज की कविता उपेक्षित थी, लेकिन आज स्वीकृता है। इसका एक मात्र कारण इस काव्य की उपलब्धियॉ है, जो समग्र हैं। कल जब ज्वार और भी शान्त होगा तब अधिक गहराइॅया लक्षित हो सकेगी, व्यक्तिगत भी समष्टिगत भी।''

('शीर्षबन्ध': 'बोलने दो चीड को'– पृष्ठ–3)

कवि का आशय यह है कि कवि मन ज्यो–ज्यो परिक्व होता जाता है, त्यो–त्यो काव्य मे गहराइयॉ परिलक्षित होती जाती हैं, काव्य में निखार आता जाता है। यद्यपि इस सग्रह की भी अधिकांश कविताऍ प्रकृतिपरक ही हैं और उनके शिल्प मे प्राकृतिक बिम्बों का प्रयोग किया गया है। 'बोलने दो चीड को', 'एक फाल्गुनी दिन' 'माघ–भूले', 'चाहता', 'सोनपर्वी दिन' आदि कविताऍ प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित श्रेष्ठ रचनाऍ है । इन कविताओ मे प्रकृति के प्रति उदात्त दृष्टि कोण है। 'फाल्गुन' कवि को विशेष प्रिय है। इस संग्रह मे फाल्गुन सम्बन्धी छ. रचानाऍ संग्रहीत हैं।

"एक स्तबक की तरह
टटके फूल वाला धूप भरा दिन
फाल्गुन का पूरा एक दिन
हाथो मे लिये चल रहा हूँ
मै इसे किसी के द्वार पर
रख आना चाहता हूँ
फाल्गुनी दिन फूलो का यह स्तवक
किसी को समर्पित कर देना चाहता हूँ।"

('एक फाल्गुनी दिन': 'बोलने दो चीड को'– पृष्ठ– 61)

'बोलने दो' चीड को' सग्रह में संग्रहीत 'एक फाल्गुनी दिन' शीर्षक कविता मे भाव विचार और कल्पना का सतुलन है। इसकी भाषा अत्यन्त व्यजंनापूर्ण है। इस कविता में फाल्गुन की श्री और समृद्धि तो है ही, समर्पण का भाव भी है।

यह सग्रह कवि की चेतना का ऐसा बिम्ब प्रस्तुत करता है। जिसमें अनेक सौन्दर्य की छवियॉ है कवि की एक निजी विशेषता है, भाषा की समाहार शक्ति, जिसके माध्यम से वह कम से कम शब्दो में अधिक से अधिक बात कह सका

है। इस संकलन मे विचार, भाषा, शिल्प सजगता तथा सौन्दर्य बोध परम्परा से जुडकर नये रूपो मे अभिव्यक्त हुआ है।

'मेरा समर्पित एकान्त' कवि नरेश मेहता के काव्य–विकास का तीसरा आयाम है। यह सग्रह दो खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड मे 19 कविताएँ है तथा दूसरे खण्ड मे 'समय देवता' लम्बी कविता है। इस सग्रह की रचनाओ का वातावरण सास्कृतिक है। इन कविताओ मे सास्कृतिक वातावरण एक आध्यात्मिक और भक्ति भावपूर्ण परिवेश प्रस्तुत करता है। 'इतिहास के दावेदार' 'और कोई है' प्रगतिशील भूमि पर प्रेरित है। 'बोलने दो चीड को' मे जो एकान्त बोध था, सौन्दर्य का उफनता हुआ ससार था और प्रकृति की जो ताजा छवियॉ थी उसी का विस्तार इस सग्रह की रचानाओ मे दिखाई देता है। ध्यातव्य यह है कि कवि का समर्पित एकान्त अकेले उसी का उकान्त नही है, उसमें मानव मात्र का एकान्त है। इस सग्रह मे कवि जीवन के इतना अधिक निकट आ गया है कि उसमें मानवीय जीवन की एक–एक झांकी मिलती है। इसमे कही पीडा बोध है तो कही मानव जीवन की विडम्बनाए कही एकान्त है तो कही कोलाहल कही प्रकृति चित्रण है तो कही रहस्य भावना। कवि का प्रकृति के प्रति पवित्रता और स्वस्थता का भाव है। कुल मिलाकर नरेश मेहता में एक गहरा मानवीय सस्पर्श का तत्व व्याप्त है।

इस संग्रह की 'इतिहास के दावेदार' कविता में साहित्य के क्षेत्र की उस राजनीति को विषय बनाया गया है, जिसके कारण लोग अवसर का लाभ उठाकर साहित्य की ऊॅचाईयों को छूना चाहते है–,

"साहित्य के इतिहास को
नक्शा बना
नेपोलियन मुद्रा में
अपने बन्धुओं को स्थापित करते

प्रदेश जयी भाव से सन्तुष्ठ थे।

x x x

हम सब इतिहास के गलियारो मे

विजयी सिकन्दर से टहल रहे।"

('इतिहास' के दावेदार'-' मेरा समर्पित एकान्त' पृष्ठ 26–27)

'मेरा समर्पित एकान्त' सग्रह की 'इतिहास के दावेदार' शीर्षक कविता मे कवि ने नेपोलियन मुद्रा तथा विजयी सिकन्दर जैसे ऐतिहासिक उपमानो का उपयोग किया है। विजयी सिकन्दर मे गर्व सन्तुष्टि का भाव है और नेपोलियन मुद्रा में विजय का भाव यानि कि हम आज झूठी शान शौकत पर गर्व और सन्तोष का अनुभव कर प्रसन्न मन से जीवन बिता रहे है।

'उसत्वा' एक प्रकार से नरेश मेहता की काव्य संवेदन का सम्पूर्ण सार–सत्व प्रस्तुत करता है। कवि की काव्य वैण्णवता का प्रतीकन प्रकृति और ब्रह्माण्ड चेतना के अत्यन्त उत्कर्ष पूर्ण बिम्बो द्वारा इस सकलन की कविताओं मे आख्यायित हुआ है।

इस सग्रह में कवि ने ब्रह्म रूप प्रकृति का साक्षात्कार प्रकृति के विभिन्न उपादानो वृक्ष, वनस्पति, दूर्वादल, झरना तथा ओसबिन्दु आदि के द्वारा किया है। प्रकृति के इन उपादनो के माध्यम से कवि ने एक अदृश्य सत्ता की अभिव्यक्ति की है। 'उत्सवा' में कवि सर्वत्र मनुष्य और सृष्टि में मंगल की कामना चाहता है। कवि सदा विराट के साक्षात्कार के प्रयत्न में रहा है। 'उसवा' की रचना कवि की उस मनोभूमि पर हुई है, जहॉ आकर उन्हें यह सृष्टि किसी विराट स्रष्टा की लीला भूमि प्रतीत होती है और जहॉ स्थल–स्थल पर नित्य एक उपनिषद रचा जा रहा है।

'उत्सवा' मे प्रकृति चेतना का विराट रूप हमे उस समय मिलता है जब पक्षी वनस्पतियो को अपना गान सौपते है, उन्हे राग सुनाते है और वनस्पतियॉ

अपनी सुगन्ध झरना में प्रवाहित कर देती है और झरने अपने जल की शोभा और प्रवाह समस्त सृष्टि को प्रदान करते है। प्रकृति के विभिन्न उपादानों का साक्षात्कार कवि ने 'उत्सवा' में किया है तथा प्रकृति के इस महाकाव्य को ईश्वरीय चेतना का महाकाव्य माना है।

"कितना अपार सुख मिला
जब किसी ने
मेरे पुण्यो को फल समझ
ढेले से तोड़ लिया।
किसी के हाथो मे
पुण्य सौप देना ही तो फल प्राप्ति है।"

('वृक्ष बोध'– 'उत्सवा'– पृष्ठ–29–30)

'उत्सवा' संग्रह की 'वृक्ष बोध' कविता में कवि ने प्रकृति के माध्यम से यह कहना चाहा है कि यदि प्रकृति के अनन्त समर्पण तथा निवेदन का भाव अगर मनुष्य में आ जाए तो धरा का जीवन सार्थक हो जाए। जैसे नदी स्वयं को सौपती है उसी प्रकार पुण्य को सौंपना ही फल प्राप्ति है। कवि का मानसिक धरातल एक ऐसे वृक्ष की भांति जीता है जो अपने पुण्यों का फल भी किसी को सौप देना चाहता है।

कवि नरेश का प्रयास है– प्रकृति के विभिन्न तत्व– पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश, प्रत्येक तत्व की विराटता का विस्तार से वर्णन। इन तत्वो के विभिन्न रूप प्रकृति वानस्पतिकता से सम्बन्धित है। पृथ्वी जो किसी के प्रति कृतघ्न नही, पात्र–कुपात्र का विचार नही करती। पृथ्वी एक भागवत कथा है और दूर्वादल की भाषावरी है, जिसे वनस्पतियों ने तरह तरह के वस्त्र पहना रखे हैं। केवल पृथ्वी ही सबको अर्थ और सन्दर्भ देती है–

"क्योंकि पृथिवी ही

सबको अर्थ और सन्दर्भ देती है।
यह पृथ्वी ही है
जो शून्य को आकाश की सज्ञा देती है,
यह पृथ्वी ही है
जो प्रकाश को धूप की सज्ञा देती है।''

('साक्षात के लिए'. 'उत्सवा'· पृष्ठ–9)

'उत्सवा' सग्रह की 'साक्षात के लिए' शीर्षक कविता मे कवि ने पृथ्वी को केवल धरती ही न मानकर जीवमात्र की कवच नारायणी माना है । पृथ्वी के कारण ही शून्य को आकाश की सज्ञा मिली है। पृथ्वी एक ऐसी कृपा है जो सूर्य, ऋतुओं तथा सारे मानवीय दु.ख–सुख को पुष्प गन्ध भाव से समर्पित करती है।

इस सकलन की कविताएँ कवि की वैष्णवी दृष्टि का परिणाम हैं। एक ऐसी वैष्णवी दृष्टि जो वैदिक उपनिषदीय प्रकृति को नये बिम्बों और प्रतीको के माध्यम से काव्यात्मक साक्षात्कार कराती है। इस सग्रह की कविताओं में कवि का मानस बाहरी जगत के द्वन्दात्मक धरातल से बहुत गहरे उतरकर एक ऐसी तन्मयता की स्थिति मे आ चुका है, जहॉ उसे या तो प्राचीन मिथक या प्रतीकों की सत्ता अभिभूत किये हुऐ है या वानस्पतिकता से ओत– प्रोत प्रकृति की सत्ता। अधिकाश कविताओं मे ये दोनो लोक एक दूसरे से घुल–मिल गये है। और कवि की चेतना उसी लोक मे पूर्णतः खो गई है।

'तुम मेरा मौन हो' (1982) कविता सग्रह द्वारा एक दृष्टि से कवि ने सर्वथा नवीन भावभूमि तथा विषय को चुनकर अपनी काव्य–चेतना मे एक नवीन आयाम जोड़ा है। पुस्तक के शीर्षक के साथ ही काव्य–विषय का सकेत करती हुई एक विशिष्ट पंक्ति है– 'वैयक्तिक वैष्णवता की कविताएँ' । अपने इस नवीन भावफलक का तादात्म्य अपनी पूर्व चेतना से स्थापित करता हुआ कवि

'भूमिकावत' मे कहता है– "शायद इसके पहले कभी कविता को मैने इतने और ऐसे समग्र रूप मे नही अनुभव किया होगा, तभी तो 'उत्सवा' की कविताओ की वैष्णवता और इस सग्रह की कविताओं की वैयक्तिकता, दोनो ही समान रूप से काव्यात्मक निवेदन है।... . .. राग–पाश मे बंधी आसक्ति की ये कविताएँ लिखी जा चुकने पर भी कैसे बारम्बार अपने लिखे जाने के आग्रह के साथ मेरे सामने आरात्रिक बैठी रहती है।"

('तुम मेरा मौन हो'. 'भूमिकावत'· पृष्ठ 9–10)

काव्य–विषय की सूक्ष्माति–सूक्ष्म पकड एव शिल्प रगो की वैण्णव सकुलता की दृष्टि से इस सकलन की कविताएं धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' से आगे की दिशा को सघानित एव सकेतित करती हुई दिखाई देती है। 'गीतगोविन्द', 'श्रीमद् भागवत', तथा वैण्णव परकीय भाव की सम्पूर्ण रागात्मकता अपने अभिनव कलात्मक उत्कर्ष के साथ इस सकलन की कविताओ में विराज मान है।

"मै जानता हूँ कि अवश हो जाने पर
तुम्हारे पास
पतझर जैसा मर्मरी निश्वास है
नेत्र कोरो में जल का आशय भी है
और पूर्ण विवश हो जाने पर
अपनी अंगुली की दबाव से
मेरे कन्धे पर लिख जाने के लिए
नितान्त ऐकान्तिक अपनी देह भागवत
की व्यथा है।"

('शिलालेख'. 'तुम मेरा मौन हो'. पृष्ठ– 12–13)

'तुम मेरा मौन हो' संग्रह मे सकलित 'शिलालेख' शीर्षक कविता की ये पंक्तियॉ परम्परित मधुरभाव को नवीन भावशिल्प एवं सवेदन आवेग के साथ व्यजित करती है ।

इस सग्रह की कविताएँ सचमुच प्रेम प्रधान ही है। जैसा कि कवि ने इस सकलन के 'भूमिकावत' मे स्वय कहा है– "यह प्रेम कविताओ का सकलन है।" इन्हे पढने से पता चलता है कि इनमे प्रणयानुभूति एव प्रणय व्यथा ही अधिक है। कही–कही वैदिक, औपनिषदीय एव सांस्कृतिक शब्दावली जैसे– कल्पवृक्ष, गन्धर्व, यक्ष, दीक्षा, वैष्णवता आदि अवश्य मिलते है। इन कविताओ मे कवि की वैयक्तिक प्रेम–पीडा नूतन उपमानों तथा प्रतीकों के माध्यम से उदात्त भाव भूमि पर अवतरति हुई है।

कवि का अगला काव्य सग्रह 'अरण्या' एक प्रकार से 'उत्सवा' की काव्य सवेदना का ही अग्रिम प्रसार है। 'उत्सवा' में जीवन उत्सव बनकर सम्पन्न होता है, आक्रोश या क्रन्दन नही। किन्तु वानस्पतिका की यह अनुभूति मनुष्य जीवन से पहले प्रकृति के आगन मे सम्पन्न होती है। 'अरण्या' नरेश जी की उस प्रकृति से मानव–चेतना में रचनात्मक वापसी है। इसमे कवि प्रकृति के पदार्थिक उत्सव मे मग्न नहीं है।, वह बार–बार अरण्यानी से अपनी धरती पर आने की कामना करता है। नरेश जी 'अरण्या' में इसी धरती को 'पूजा के समय पार्थिव' बनाने में तन्मय रहे है। 'अरण्या' की कविताओ मे उनका वैचारिक औपनिषदिक वर्चस्व पृथ्वी की निरीह करूणा मे घुलकर तरल हो उठा है और सहज से सहज दृश्यों मे उनकी कवि दृष्टि ऋषित्व को प्राप्त करने मे उद्ग्रीव हुई है।

काव्य मनुष्य को लोकोत्तर बनाने का आह्वान सदा से करता आया है, किसी आचार–विचार से नही, शब्द की प्राण–शक्ति का आह्वान करके, शब्द यज्ञ करके। शब्द द्वारा किया गया कवि का यह यज्ञ चेतना की विकास यात्रा की प्रकिया है जो देश और काल दोनों का अतिक्रमण कर जाती है। शब्द को

उच्चरित होने को ही मेहता जी यज्ञ कहते है। कवि स्वयं इस शब्द यज्ञ मे चेतना के सुदीप्त गावाक्षो को खोल रहा है। नरेश जी का शब्द–यज्ञ अर्थ और विचार की आहुति रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

'अरण्या' की कविताएँ पृथ्वी पर केन्द्रित है। कवि ने वानप्रस्थी या आरण्यक भाव लेकर अरण्य मे प्रवेश नही किया है, उसने तो अरण्य को अरण्या भाव अर्थात् फल–फूल से सम्पन्न फलते–फूलते वानस्पतिक रूप मे परिणत किया है।

कवि को पृथ्वी सर्वथा एक सुभदा विग्रह लगती है। इसके महास्त्रोत को मनुष्य पढ नही पाता। कवि मेहता जी ने कभी पृथ्वी पर मृत्तिकोपनिषद् लिखा देखा तो कभी पंचचामरी महास्त्रोत। उसकी दृष्टि मे पृथ्वी सदा 'शिव रूपा', 'कल्याणरूपा' ही है। वह कहता है–

"तमु क्यो नहीं समझते कि
यह विश्वात्मना सृष्टि
तत्वों की पचधातु की भाषा मे लिखा
एक प्रयोजन है
पचचामरी छदवाला महास्तोत्र है।
पृथ्वी के इस उत्सवी सदाशिव विग्रह को
पुनः रूद्र मत बनाओ
मत जगाओ तत्वो की इस शांभवी को
मत जगाओ इस पंचानन को
मत जगाओ ।"

('पचानन'–'अरण्या'–पृष्ठ–55)

'अरण्या' संग्रह की 'पंचानन' शीर्षक कविता मे कवि ने बेहद उत्सव भाव से पंचतत्वों की पार्थिव लीला को कविता मे उकेरा है। वह बार–बार मना करता

है कि इस ग्रह पर रूद्रभाव न जगाया जाय– किसी भी तत्व मे रूद्र का जागरण न हो तभी पृथ्वी 'सदा शिव विग्रह' का रूपायन और सचार लगेगी।

'अरण्या' मे नरेश जी की वाणी उदात्त उद्घोष करती है। यहॉ भाषा मन्त्र बनने के अनुष्ठान मे आकाश–गगाओ, प्राचीन प्रकाशो, नवीन ज्योतियो, सौर मण्डलो, समुद्रो आदि की प्राकृतिक सम्पदाओ को शब्दबिम्बित करती छन्दव्यक्तित्व की एक ऐसी भद्र कविता को अवतरित करने में सलग्न है जो विराट या विश्वात्मन् का वहन तो करती ही है, मनुष्य और सृष्टि को आश्वस्ति भी देती है।

औपनिषदिक बिम्बों और मिथको का इतना सघन और समृद्धि प्रयोग नरेश मेहता के इन दो संकलनो 'उत्सवा' और 'अरण्या' मे सम्पन्न हुआ है जो निश्चय ही पाठक को एक दूसरे भाषालोक मे ले जाता है । जहॉ एक ओर इस पृथ्वी की वानस्पतिक वैष्णवता है तो दूसरी ओर सम्पूर्ण आकाश मे विचरण करती हुई आकाश–गगायें, सूर्य, चन्द्र, निहारिकाये उसी वैष्णवता के विराटतर स्वरूप को साकार करता है।

'पिछले दिनो नंगे पैरों'–यह एक ऐसा संकलन है जिसकी कविताओं मे मध्यकालीन भारतीय इतिहास के क्रूर फलक पर मुस्लिम शासको के निर्मम आंतक से थरथर कापती हुई रक्तरजिता मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति का विद्रूप चित्र अकित किया गया है। असीर गढ के बहाने लिखी गयी इतिहास बोध की इन तमाम कतिाओ के माध्यम से हमे अंधेरे मे थोडी–थोडी धूप और ताजी हवा भी मिलती है।यही धूप, हवा के झोके और आकाश के टुकडे इतिहास की घुटन और रक्तपात के बीच भी मनुष्य को आज तक जीवित रखे हुए है।

वास्तव मे इस सग्रह की कविताऍ मध्यकालीन जलती हुई ऐतिहासिकता पर नगे पैरों जैसा चलना ही थी अर्थात् कठिन या कष्टकर कार्य था। इस

सन्दर्भ में नरेश जी ने स्वत. लिखा है –''वस्तुत. ये कविताएँ मध्यकालीन ऐतिहासिकता पर नगे पैरो जैसा चलना थी। इसलिए इस सग्रह की अन्तिम कविता की पहली पक्ति 'पिछले दिनो नगे पैरो' से उपयुक्त भले ही सार्थक न भी सही, दूसरा नाम या सज्ञा, इस सकलन का नही हो सकता था।''

('पिछले दिनो नगे पैरो'–'उपक्रमपूर्व'– पृष्ठ–10)

'असीरगढ के किले' के प्राकृतिक परिदृश्य का वर्णन करते हुए असीरगढ के प्रति रागात्मक मोंह का उत्स कवि के हृदय मे फूट पडता है–

''मेरे साथ
यह कैसा असीरगढ चला आया है।
जिसके प्रागैतिहासिक एकान्तो ने मुझे भी
अभिशप्त चिरंजीवी अश्वत्थामा बना दिया है''

('असीरगढ के किले'. 'पिछले दिनों नगे पैरो': पृष्ठ 30)

इस कविता मे कवि ने महाभारत के उस मिथक का प्रयोग किया है, जिसके अनुसार आर्चाय द्रोण पुत्र अश्वत्थाामा जो चिरजीवी था, द्रोणाचार्य की मृत्यु पर वह विक्षिप्त एवं अभिशप्त हो गया था। कवि कहता है कि इस असीरगढ के प्रागैतिहासिक एकान्तो ने मुझे भी चिरजीवी अश्वस्थामा की तरह व्याकुल सा कर दिया है।

कवि ने इस संकलन की कविताओं मे पौराणिक बिम्बों एव मिथको के माध्यम से अपनी काव्यभाषा को नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। उदाहरणार्थ– असीरगढ़ के किले, दरवाजों, दर–दरवाजो एव अग्रेजी रेजीमेण्ट की मेहराबो का वर्णन करते हुए वहॉ के प्राकृतिक दृश्यों के लिए 'पितामह,' 'अश्वत्थामा' 'पाण्डवों के वृक्षासीन अयुधो' जैसे मिथकीय उपमाने का प्रयोग किया गया है।

'देखना एक दिन (1990) यह कवि का अन्तिम काव्य संकलन है। इसमें कुल 75 कविताएं सग्रहीत हैं। इसके शीर्षबन्ध में कवि का कथन है– ''इधर के

काव्य सकलनो –'आखिर समुद्र से तात्पर्य,' 'पिछले दिनो नगे पैरो' या यह सकलन 'देखना एक दिन' यदि पूर्व सकलनों से अलग लगते है, जो कुछ तो लगते ही है तो यह स्वरूपगत या बानकगत ही होगा । मै किसी उर्ध्व से नीचे आकर अब धरती के ज्यादा निकट हुआ हूँ या लग रहा हूँ, ऐसा मानना वास्तविक न होगा।"

('शीर्षबन्ध' 'देखना एक दिन' पृष्ठ– 2)

यद्यपि भले ही कवि ने इस बात को नकारा है किन्तु यह सच है कि इस सग्रह की कविताओ मे एक अभिजात्य, एक सास्कृतिकबोध और मानवतावादी दृष्टि कोण दिखाई देता है। अन्य सकलनो की तरह इस सकलन की कविताएँ भी आध्यात्मिक धरातल एवं सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर ही प्रतिष्ठित है–

"देखना –
एक दिन चुक जायेगा
यह सूर्य भी,
सूख जायेगे सभी जल
एक दिन
हवा
चाहे मातरिश्वा हो
नाम को भी नही होगी
एक दिन,
नही होगी अग्नि कोई
और उस दिन
नहीं होगी मृत्तिका भी।"

('देखना एक दिन': 'देखना एक दिन': पृष्ठ–10)

'देखना एक दिन' शीर्षक कविता मे कवि भारतीय वैदिक दर्शन से प्रभावित है। हमारे वैदिक साहित्यो मे जगत की नश्वरता वर्णित है। कवि के अनुसार यह भौतिक जगत जिन पाच तत्वो– क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीर से बना है, उनमें से कोई भी नहीं रह जायेगा। यहॉ कवि भारतीय वैदिक दर्शन से प्रभावित है।

इस संग्रह के कविताओ की भाषा अपने आध्यात्मिक एंव सास्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप प्राचीन आर्ष प्रतीको और मिथको की भाषा है। जो एक विशाल सर्जनात्मक फलक जैसी लगती है।

नरेश मेहता ने अपने खण्ड काव्यो की रचना मिथकीय आधार पर की है। 'संशय की रात', 'महाप्रस्थान,' 'शबरी' और 'प्रवाद–पर्व' सभी खण्ड काव्यो मे मिथक का आधार लिया गया है। समकालीन समस्याओ तथा प्रश्नो को कवि ने 'रामायण' और 'महाभारत' के मिथको से जोडा है। मिथक किसी जाति की संस्कृति के गहरे स्रोत होते है। वे अतीत से वर्तमान तक और वर्तमान से भविष्य तक अपनी प्रवहमानता बनाये रहते है। भारतीय सन्दर्भ मे इन मिथको का आत्यन्तिक महत्व है। किसी भी भारतीय के लिए राम, कृण्ण, शिव आदि ऐसे प्रेरक शब्द है कि उनके उच्चारण मात्र से उसके हृदय मे स्फुरण होने लगता है।

'संशय की एक रात' कवि का पहला खण्ड काव्य है। इस खण्ड काव्य में पहली बार किसी कवि ने राम कथा के सन्दर्भ को इस रूप में देखने की कोशिश की है जहॉ युद्ध संहार का सबसे कुरूप और अमानवीय कर्म है और जिसके लिए कोई भी औचित्य बनता नही।

कवि और समीक्षक लक्ष्मीकान्त वर्मा द्वारा 'संशय की एक रात' पर लिखे गये एक समीक्षात्मक निबन्ध के 'प्रसग दृष्टि' उपशीर्षक की निम्न पक्तियॉ इस खण्ड काव्य की संवेदना को काफी कुछ स्पष्ट कर देती हैं– ''सशय की एक

रात मे श्री मेहता की प्रसंग–दृष्टि मर्यादा पुरूषोत्म राम के आन्तरिक सषर्ष को मानवीय सन्दर्भ से जोड सकने से ओत–प्रोत है। राम के मन मे संघर्ष युद्ध और शान्ति को लेकर है। युद्ध स्वय में मूल्यो के विघटन का परिणाम होता है। मर्यादाओं की विकृति ही युद्ध की आधार पीठिका होती है। स्वार्थ और परमार्थ जब इतने निकट आ जाते है कि उनमें कोई धुधली सी सीमारेखा भी अलगाव के लिए नही सम्भव होती तब सक्रमण की स्थिति जन्मती है। इस सक्रमण की अभिव्यक्ति हमेशा संशय मे ही हुई है चाहे वह महाभारत मे धर्म क्षेत्रे कुरूक्षेत्रे अर्जुन का सशय हो, चाहे वह हैमलेट के निजी व्यक्तित्व मे बारम्बार उठने वाला 'टू बी आर नाट टू बी' के रूप मे हो। सशय हमेशा उस व्यक्ति की अभिव्यक्ति है जिसके मानस मे एक चुके हुए सस्कार के वैभव की स्मृति तथा एक अजन्मे इतिहास की असमर्थता व्याप्त होती है। 'सशय की एक रात' उसी स्वार्थ–परमार्थ की, मर्यादा और दायित्व की , चुके हुए सस्कार की स्मृति तथा अजन्मे इतिहास की वेदना से कलात्मक रूप मे आद्यन्त ओत–प्रेत काव्य है।''

('आधुनिक कविता की उपलब्धि· सशय की रात'– 'सशय की एक रात'–पृष्ठ–14–15)

नरेश मेहता के राम दाशरथी संस्कार से जडी भूत व्यक्तित्व हैं , इतिहास से सम्बद्ध व्यक्तित्व है, युवराज राम है जो चौदह वर्ष बाद दाशरथी परम्परा को वाहक होगे, इतिहास के हाथो निर्वासित राम हैं, पुत्र के रूप में पश्चाताप से ग्रस्त राम हैं जो बारम्बार कहते है–

''यदि मै कर्म हूॅ
तो यह कर्म का संशय है
यदि में क्षण मात्र हूॅ
तो यह क्षण का सशय है
यदि मै मात्र घटना हूॅ

तो यह घटना का सशय है”

('सशय की एक रात'· पृष्ठ –51)

यहाँ उस राम का सशय है जो दशरथ की परम्परा को वाहक हैं। यह उस राम का सशय है जिसके मन मे दाशरथी परम्परा का मोह है और जो कि इस मोह से मुक्त हो सकने मे अपने को असमर्थ पाते है।

चार सर्गों के इस प्रबन्ध मे स्वयं सर्गों का नामकरण ही यह बताता है कि कवि ने सर्गों का विभाजन विषय या घटना के क्रम मे नही किया है वरन् बिम्बो के क्रमिक सयोजन से उसने घटना, विषय और कथा तीनो को गुम्फित करने की चेष्टा की है। इसकी भाषा पैराणिकता और समसामयिकता के बीच जूझती हुई चलती है। यद्यपि इनका आग्रह पौराणिकता के प्रति है लेकिन इनका रचना–सकल्प इनको आधुनिकता से पृथक नही होने देता।

'महाप्रस्थान' कवि का दूसरा का खण्ड काव्य है। यह भी 'सशय की एक रात' की तरह युद्ध की समस्या पर केन्द्रित है। युद्ध, कवि नरेश मेहता के चिन्तन को सर्वाधिक उद्वेलित करने वाला मानव व्यापार है।

सचमुच युद्ध मानवीय सस्कृति की सबसे भयानक दुर्घटना है। इसमें सब कुछ समाप्त हो जाता है। सारी मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं। युद्धोपरान्त हिमालय जाते हुए युधिष्ठर के मन को युद्ध से जुडी सारी समृतियॉ झक झोरती रहती है। कृण्ण के पुष्ट तर्कों और दार्शनिक उद्‌बोधन ने अर्जुन के मोह को तो समाप्त किया और वह भयानक युद्ध हुआ भी। परन्तु उस युद्ध के भयानक नरसंहार और रक्तपात के पश्चात उस राज्य का भोग पाण्डवों के लिए सम्भव नहीं हो सका। उनका मानस परिताप और पापबोध से जलने लगता है और अन्ततः वे हिमालय मे गलने को चल देते हैं। इसी 'महाप्रस्थान' के प्रसग को लेकर श्री नरेश मेहता ने इस दूसरे खण्ड काव्य की रचना की। यह खण्ड काव्य उस सारे मानसिक उहा–पोह को प्रस्तुत करता है जो हिमालय यात्रा के

क्षणो में पाण्डवो और द्रोपदी के मन मे होता चलता है। पहले द्रोपदी हिम मे डूबती है, फिर नकुल–सहदेव, फिर अर्जुन और अन्तत भीम और सर्वान्त मे युधिष्ठर। इस यात्रा मे जो पाण्डवो के मन की अन्तर्यात्रा हुई है, जिसे एकालाप और सलापो के माध्यम से कवि ने अभिव्यक्त किया है। उससे एक बार फिर उसने आधुनिक युग के अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नो को छेडा है। युद्ध की भयावहता और राज्य तथा व्यक्ति के सम्बन्ध के अत्यन्त आधुनिक पक्ष इस खण्ड काव्य मे उभरते है।

"किसी भी साम्राज्य से बडा है
एक बन्धु
एक अनाम मनुष्य।।
मुझे मनुष्य मे विराजे देवता मे
सदा विश्वास रहा है,
इस देवता के जाग्रत होने की प्रतिक्षा मे
मैं अनन्तकाल तक प्रतीक्षा कर सकता हूँ भीम!"

('महाप्रस्थान'– पृष्ठ–98)

यहॉ युधिष्ठर भी 'सशय की एक रात' के राम की भाषा बोलते हुए कहते है कि मनुष्य में जो श्रेष्ठ तत्व हैं उन्हे ही जगाना होगा। करूणा, प्रेम, अहिसा का अलख जगाये बिना मानवता इस प्रतिहिसा और युद्धो के रास्ते चलकर हमेशा भटकती रहेगी। आज मनुष्य को मनुष्य बनाना ही सबसे बडा अभियान है।

'महाप्रस्थान' की भाषा–सरचना में धर्म–अस्मिता का बोध बेझिझक उभरता आया है इसमें विशेषणो की लडिया आद्यन्त गूथी पडी है, जिनसे इस काव्य की धर्म– अस्मिता साकार और सवेदित होती रही है। कही न कही यह काव्य तत्समता से संग्रथित अवश्य है पर शायद धर्म की जटिल अस्मिता के

लिए यह जरूरी है, नही तो निराला को 'राम की शक्ति पूजा' मे ऐसी ही शब्दावली का प्रयोग क्यो करना पडता? इस जटिल किन्तु सार्थक शब्द रचना के बीच भाषा का सहज सरल तरल रूप भी प्रवाहित होता रहा है।

'शबरी' नरेश मेहता का तीसरा खण्ड काव्य है। इस रचना के माध्यम से कवि ने इस देश मे जाति और वर्ण जैसी जडीभूत व्यवस्था के अत्यन्त संवेदनशील पक्ष को उभारता है। कवि नरेश मेहता ने शबरी की कथा के माध्यम से एक नया आयाम उभारते है। जो 'शबरी' की भूमिका मे लिखी हुई निम्न पक्तियो से ध्वनित होता है–

"शबरी अपनी जन्मगत निम्नवर्गीयता को कर्म दृष्टि के द्वारा वैचारिक उर्ध्वता में परिणत करती है। यह आत्मिक या आध्यात्मिक सघर्ष, व्यक्ति के सन्दर्भ मे मुझे आज भी प्रासगिक लगता है। सामाजिक मूढता, परिवेशगत जडता तथा युग के साथ सलापहीनता की स्थिति मे व्यक्ति केवल अपने को ही जाग्रत कर सकता है। इसी सघर्ष के माध्यम से 'स्व', 'पर' हो सकता है, व्यक्ति समाज बन सकता है।"

('भूमिका'–'शबरी'– पृष्ठ–9)

'शबरी' की मूल सवेदना व्यक्ति की अपनी अस्मिता को प्रमाणित करने की ही है। 'शबरी' उस संकल्प यात्रा मे पूरी तौर पर खरी उतरती है। राम द्वारा की गयी शबरी की अभ्यर्थना–

"शबरी अन्त्यज है तो क्या
वह शक्ति रूप है शूद्रा,
है तेज रूप वह केवल
शिव शक्ति रूप है शूद्रा।"

('शबरी'–पृष्ठ–70)

मानव–जीवन की सकल–सम्भवा क्षमता को प्रतिष्ठित करती है।

'शबरी' मे नरेश मेहता का भाषिक तेवर और स्वरूप बदला–बदला सा लगता है। इसकी रचना तुकान्तपदो मे की गयी है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल है, तत्समता से युक्त और अर्थवान भाषा है। वैचारिकता के प्रति विशेष आग्रह न होने के कारण इस काव्य की भाषा आंद्यत सहज बनी रही है। भावसम्प्रेषण के लिए उपमानो मे पावनता, स्निग्घता और ताजगी है।

कवि का अन्तिम खण्ड काव्य–'प्रवाद पर्व' राम कथा के 'सीता का निष्कासन' प्रसग पर आधारित है। एक साधारणजन का सीता के चरित्र पर कलक लगाना राम को उद्विग्न करता है। राम के लिए सीता की पावनता पर प्रश्नचिन्ह राम की राजसी गरिमा पर प्रश्न चिन्ह है। वे इसे मात्र अगुली नही प्रति इतिहास का प्रतीक मानते है। प्रति–इतिहास सदा अनाम और अलिखित होता है। यह इतिहास के प्रति एक प्रतिक्रिया है। इस खण्ड–काव्य मे धोबी एक अनाम साधारण जन के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। और उसकी शंका की तर्जनी एक साधारण अनामजन की तर्जनी बन गयी है। राज्य जब–जब एकाधिकारवादी बनता है, उसे सदा से ही यह साधारणजन अपनी अनाम तर्जनी उठाकर चुनौती देता रहा है और यह चुनौती सदा से ही अत्यन्त शक्तिमान सिद्ध होती रही है। 'प्रवाद–पर्व' मे राज्य की निरकुश सत्ता के मुकाबले मे उठी साधारणजन की इस तर्जनी की ही प्रतिष्ठा है। राम शंका की उस तर्जनी का शमन करने के लिए दमन का रास्ता नही वरन् परीक्षा का रास्ता चुनते है। परन्तु जिस युग–सन्धि पर यह काव्य लिखा गया था, उस समय की राजसत्ता को यह स्वीकार नही था।उस समय कवि ने जिस नैतिक बोध का परिचय निम्न पंक्तियों मे दिया है वह निश्चय ही श्लाघनीय है–

"व्यक्ति
चाहे वह राज पुरूष हो या
इतिहास पुरूष अथवा

पुराण पुरूष

मानवीय देश–कालता से ऊपर नही होता राम।

इतिहास से भी बडा मूल्य है

सत्य–

परात्पर सत्य ऋत्–

और

यही तुम्हारी चरित्र मर्यादा है,

ऋतम्भरा व्यक्तित्व है।"

('प्रवाद–पर्व'–पृष्ठ–35)

यहॉ कवि ने राजसत्ता से बडी जनसत्ता को और उसे भी सत्य और ऋत से जोडकर ही स्वीकृति देता है।

'प्रवाद –पर्व' की भाषा रचनात्मकता से युक्त है। इसमें आये शब्द अर्थ को विस्तार देते है। इसकी शब्द योजना अर्थान्वित है। वह अर्थ को प्रेषित करती हुई अर्थ बोध को जगाती है। शब्द की जडता को समाप्त कर देती है। 'प्रवाद–पर्व' का शब्द–विधान–सस्वर है, सचल और सगध है । उसमें बिम्ब विधान की उद्भुत क्षमता विद्यमान है।

कवि कर्म की सबसे बडी कसौटी भाषा है। जिस बिन्दु पर अभिव्यक्ति कविता बन जाती है और कहॉ वह केवल एक कथन–मात्र बनकर रह जाती है, इसका निर्णायक तत्व भाषा ही है। अनुभूति और भाषा, भाषा और अनुभूति ये दो तत्त परस्पर एक दूसरे मे घुलते है, एक दूसरे से टकराते हैं, एक दूसरे मे चरितार्थ होते हैं। अनुभूति जहॉ एक ओर तात्कालिक परिवेश से उत्सर्जित होती है, रूपायति होती है, वहीं उसका उत्स रचनाकर की पूरी संस्कारिता मे होता है। वही संस्कारिता रचनाकार को उसकी भाषा देती है। किसी श्रेष्ठ काव्य की पहचान की कसौटी जो तात्कालिक रूप मे हमारे सामने आती है, वह यही है

कि किसी कवि की संस्कारिता उसकी काव्यानुभूति और काव्य–भाषा को किस सीमा तक जोड पाती है और उस जोड मे वर्तमान की किस सीमा तक सगति और सार्थकता बैठती है तथा भविष्य को कितनी दूर तक आत्मसात किया जा सका है। नरेश जी इस दृष्टि से निश्चय ही एक विशिष्ट रचनाकार है। उनकी भाषा न केवल अन्य सभी कवियो की भाषा से जो उनके समकालीन है, अलग खडी है वरन उस भाषा की खोज और उसके रूपायन मे कवि को गहरी साधना करनी पडी है।

नरेश मेहता की भाषा का स्वरूप बहुत दूर तक इस देश की आर्ष–चिन्तन परम्परा से निर्मित हुआ प्रतीत होता है उसकी शब्दावली आर्ष–चिन्तन की शब्दवली है। जब हम नरेश जी की काव्यभाषा की अन्विति को स्वायत्त करने के लिए अग्रसर होते है तो सबसे गहरी विशिष्टता उनकी भाववाचकता प्रतीत होती है। उन्हे यह सृष्टि अपनी भावमयता में ही आह्लादित करती है। प्रत्येक सज्ञा व्यक्तिवाचकता और जाति वाचकता को अतिक्रमित करके अपनी भाववाचकता मे ही कवि के लिए अर्थवती होती है उन्हे वनस्पति उतनी प्रभावित नही करती जितनी वानस्पतिकता, वैष्णव उतना प्रभावित नही करता जितनीं वैष्णवता, वृन्दावंन उनके मन को उतना नही स्पन्दित करता जितनी वृन्दावनता। वानस्पतिक प्रियता, उत्सव–वैष्णवता, वैण्णवी सम्पूर्णता, आकाश की नीलवर्णता, राग की असमाप्तता, तापसी कुन्दता, विशाल कौटुम्बिकता, उपनिषदीय–आश्रमता, कारूणी असंगता, वासुदेविक प्रकम्पिता, वैदिकता, आरण्यकता जैसे प्रयोग कवि के व्यक्तित्व की एक ढलान की ओर निर्भ्रान्त सकेत करते हैं और वह ढलान है वस्तु की आन्तरिक सत्ता, भाव सत्ता से साक्षात्कार की प्रवृत्ति।

"किसी स्नेह ने
झोर–झोर झक झोर सिखाई

पीपल की कम्पन <u>विनम्रता</u>

हमे वर गये विराट स्वर, पर

गाने को अपनी <u>अपात्रता</u>

मेरी वाणी।

सिन्धु दुहो इस आयुशख के शीलपात्र मे।

जागेगी, निश्चय जागेगी

अपमानो का चीर यश प्रिया <u>वैतालिकता</u>।।''

('देव कृपाएँ' 'वन पाखी! सुनो।।' पृष्ठ–54)

अथवा

''विश्वास करो

स्मरण के उस गोचारण मे

कही तुम्हारे लिए

कोई प्रार्थना–धेनुएँ दुह रहा होता है,

व्यक्तित्व की यह <u>वृन्दावनता</u> ही प्रार्थना है।''

('प्रार्थना धेनुएँ'· 'उत्सवा'· पृष्ठ–25)

अथवा

''कभी ब्रह्म मुहूर्त मे

मेघों का त्रिपुण्ड लगाये

इस सात्विक को देखा है?

इस मनस्वी को पचपात्री, <u>ताम्रता</u> ही पूर्व है

और तापसी <u>कुन्दनता</u> पश्चिम।''

('ग्रामयत्रिन'· 'उत्सवा'· पृष्ठ–33)

अथवा
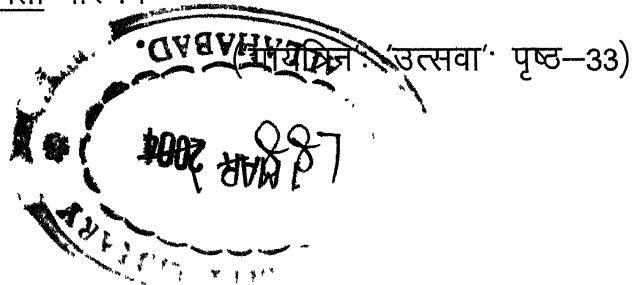
"प्रति दिन पीताम्बरा यह
वैष्णवी
किसके अनुग्रह सी
आकाशों मे देववस्त्रो सी
अकलंक बनी रहती है?
सम्पूर्ण वानस्पतिकता
पीत चन्दन लेपित
उदात्त माधवी, वैष्णवता लगती है
मेरा यह कैसा अकेलापन"

('धूप कृण्णा'. 'उत्सवा' पृष्ठ–27)

अथवा

"आरात्रिक कैसी यह वानस्पतिप्रियता
धूप मे
हवा मे
माटी मे होती है,
यह होना ही पूजा है।
वृक्ष जब धर्म रूप होता है
फूल खिलता है
उसकी यह उत्सव वैण्णवता ही
मुझे पूर्ण करती है।"

('पूर्णता': 'उत्सवा': पृष्ठ–52)

अथवा

"वैयक्तिकता
या अपनी अमूल्य ऐकान्तिकता को

चौराहे की चीज बनाकर क्या मिला है?
काव्य या करूणा
या किसी भी उदात्तता का
तुम्हारे लिए शायद अब कोई अर्थ नही रह गया है।"

('एक प्रश्न' 'उत्सवा' पृष्ठ–60)

अथवा

"पशु प्रिया दूर्वाओ मे
ये हरिद्र अकुर .
क्या मात्र पत्तियॉ है?
इनमे स्तुतियो की सी कृतकृत्यता नही लगती?"

('महाभाव': 'उत्सवा'. पृष्ठ–42)

अथवा

"हवा में उडते तुम्हारे चीनाशुक मे
और पीले रग के केना के
हिलते हरे प्रलम्ब पत्तों मे
केलि–प्रसग जैसी
एक लयता है
जो कि गुलाब उडाती
कुमार गन्धर्व की आलाप की कमनीयता ही हो सकती है।
रूमालो जैसे पतले दल के
हिलते केना मे
और सान्ध्य धूप मे
लान पर टहलती तुम मे
जाने कैसी मध्यकालीन कुलीनता की साम्यता है

जो कि तोल्सतोय की नताशा मे ही सम्भव है।"

('पता नहीं कौन' 'तुम मेरा मौन हो' पृष्ठ–1)

अथवा

"मेरे इस एकान्त की सीढिया चढकर देखो
तुम्हे लगेगा कि
किसी जल–वाद्य के परदो पर
क्रमश. चढते हुए तुम
मेरे एकान्त को मन्दाक्रान्ता भाषा दे रही हो।
बाउल–गान की आकुलता वाले
इस एकान्त की तन्मयता ही तुम्हारा स्मरण है प्रिया"

('स्मरण गन्ध' 'तुम मेरा मौन हो' पृष्ठ –10)

अथवा

"यदि बन सको–
इन पर्वतो की भाति औघड
नदियो की भाति पारदर्शी स्वरूप
और इन आदिम हवाओ की भाति अनागारिक
तो, तुम्हे
यह घासो वाली छोटी सी निर्जनता ही
केश खोले किन्नरियों सी अलभ्य लगेगी
और इसी अलभ्यता के आमन्त्रण के
किसी छोर पर ही
साधारण दूर्वाओं जैसी वह अप्राप्यता है
जो कामधेनु है।"

('कामधेनु'. 'अरण्या'. पृष्ठ 7–6)

अथवा

''राजमहिषी अलंकृता भाषा ने
जैसे ही एकान्त देखा
तो अपने सारे आभरण, अलकार और सार्वजनिकता
व्यक्तित्व पर से उतार डाले
और परिरम्भण मुद्रा मे
निर्धूम हो गयी ।''

('भाषानिपात'. 'अरण्या'. पृष्ठ–16)

अथवा

''तपते तो घर भी है
और वृक्ष भी,
मगर यह तुम पर निर्भर करेगा, कि
तुम किस तपस्विता को चुनते हो
घर की
या वृक्ष की ?''

('तपस्विता' 'आखिर समुद्र से तात्पर्य' पृष्ठ–16)

अथवा

''सागर! तुम्हें नहीं लगता, कि
तुम्हारी यह चिरंजीविता
स्वयं तुम्हारे लिए ही अभिशाप है?
तुम किसी भी दिन क्या
किसी भी क्षण
कहीं भी
ध्रुव से लेकर ध्रुव तक

अपनी इस विशालता को
कितना ही उलटो–पलटो
पछाडे खाओ
तुम्हारे व्यक्तित्व मे ऐसी निबद्व हो गयी है, कि
तुम्हे एक क्षण को भी
छोटे से जलाशयवाली
न मनोरम काम्यता ही प्राप्त हो सकती है
और न मधुरिमा।''

('चिरजीविता' 'आखिर समुद्र से तात्पर्य'· पृष्ठ–80)

अथवा

''आक्षण, प्रतिपल दिग्मण्डल मे
यह कैसी अनाश्रयी चिन्मयता है
जो विपरीत गुणात्मकता मे
क्षण–क्षण पर अभिव्यक्त हो रही
लुप्त हो रही
हिम–आतपवाली इस भावसृष्टि मे
विद्युत की कणादता लेकर
घटित हो रही
वैश्वनरता।''

('महाप्रस्थान'· पृष्ठ–42)

अथवा

''ज्वारों के कशाघात सहते
योजनों विस्तार मे फैले
सागरो

समुद्रो को कभी देखा है?
यह कैसी वैश्वानरी विवशता है
जो वनस्पतियो से लेकर
दीपो की एकान्तता
वनों की अगाधता
आकाश की अगम्यताओ तक
अनासक्त भाव से व्याप्त है।''

('प्रवाद पर्व'– पृष्ठ–25)

अथवा

''उन नयानो मे करूणा थी
औ, थी पवित्र पावनता
उसको सब प्रभुमय लगता
थी उसमें प्रभु की प्रभुता।

('शबरी' :पृष्ठ–40)

उपर की काव्य पंक्तियो मे रेखाकित भाववाचक शब्दो की बहुलता कवि नरेश की काव्यभाषा के आयाम को दिखलाते है। जिनमे भाववाचक सज्ञा उनकी अनुभूति चेतना का केन्द्रिय तत्व बन जाता है। नरेश जी ने अपनी काव्यभाषा को बार–बार उसी परिणति तक पहुॅचाते है, जहॉ सज्ञा की भाव वाचकता ही उनकी सृजन चेतना की पहचान बन जाती है। वस्तुतः भाव वाचकता की तरफ उनकी रूझान लगातार स्थूल से सूक्ष्म की ओर उनके विकास की पर्याय है। इस भाववाचकता में उनके आत्मा की सुगन्ध एक सर्जनात्मक मिठास भरती है। पाठक भी उसी भाववाचकता मे रमण करने लगता है। यह भाववाचकता केवल भाषिक तत्व नही है। यह कवि की सर्जनात्मक सवेदना की भाषिक परिणति है। कवि की संवेदना स्थूल धरातल पर टिकती नहीं है। वह हमेशा सूक्ष्म वायवीयता

की ओर बढती है। इसी को दृष्टि मे रखकर यह कहा गया है कि नरेश मेहता की काव्य चेतना मे वायवीयता का प्राधान्य है। वे ठोस और तरल अवस्थाओ के कवि नही है। "नरेश मेहता की काव्यभूमि उस कडाही से तुलनीय है जिसके नीचे निरन्तर आग जलती हो और कडाही का तरल पदार्थ वाष्पपूरित होकर वायव्य अवस्था को प्राप्त होता रहता हो। मैने नरेश मेहता की सर्जनात्मक भूमि को प्रेम के उन्नयन और उदात्तीकरण की एक भूमि के रूप मे ही देखा और पहचाना है। 'उत्सवा' की प्रत्येक कविता में मनुष्यता की एक कल्याणी गन्ध नासा–पुटो को भरती रहती है। जैसा मैने कहा नरेश जी की रचनाएँ अपने आयतन को प्रसारित करती हुई आकार को पात्र की क्षमता के अनुकूल बदलती हुई पात्र की चेतना को पूरा का पूरा भर देती हैं। एक अजीब तन्मयता का अहसास इन कविताओ से गुजरते हुए होता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपनी चेतना–सत्ता का अहसास पाठक के भीतर जैसे उतारता चला जा रहा हो।"

('आर्ष प्रज्ञा के कवि श्री नरेश मेहता' 'नई कविता नई दृष्टि'–पृष्ठ–122)

नरेश मेहता के काव्य भाषा की दूसरी और शायद सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है– औपनिषदिक बिम्ब लोक की भाषा। नरेश जी का काव्यलोक मिथकों का लोक है, प्राचीन आर्ष– प्रतीको का लोक है, भारतीय चिन्तन धारा को समोने वाला लोक है। नरेश मेहता का कवि व्यक्तित्व पूरी आर्ष–चिन्तन शीलता में डूबा हुआ है। उनकी सम्पूर्ण शब्दावली उसी आर्ष–परम्परा मे सस्कारित हुई है। नरेश मेहता के कवि व्यक्तित्व का, जैसा कि ऊपर कहा गया है, केन्द्रीय आयाम उनका बिम्ब विधान है, ये विम्ब प्रकृति से उठाये गये बिम्ब है, जिसमे पृथ्वी, आकाश और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाविष्ट है। ये बिम्ब भारतीय आर्ष परम्परा से उठाये गये है, जिनका आधार सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय सस्कृत वाङ्मय, वेद, उपनिषद और अन्य भारतीय वाङ्मय जब नरेश मेहता किसी एक बिम्ब को प्रस्तुत करते है तो उसके साथ एक पूरा बिम्ब लोक पाठक की मनस

चेतना के सामने कौध जाते है। वह मात्र एक बिम्ब नहीं रह जाता है, भारतीय चिन्ता धारा का एक महत्वपूर्णफलक पाठक की चेतना मे कौधने लगता है।

यो तो उनकी पूरी काव्य यात्रा एक प्रकार से इसी बिम्ब विधान की यात्रा है किन्तु 'उत्सवा' तक आते–आते इसकी सघनता और मिथकीयता चरम पर पहुँच जाती है। आधुनिक कविता की भाषा पर जब हम विचार करते हैं तो इन प्रतीको, बिम्बों और मिथको का गहरा महत्व हमारी समझ मे जाते है और कहॉ उनकी मिथकीय चेतना एक आने लगता है। नरेश मेहता कहॉ बिम्ब से चलकर मिथक लोक में गहरे बिम्ब विधान की अन्विति प्राप्त कर लेती है यह देखते ही बनता है। नरेश मेहता के काव्यभाषा का यह बिम्ब मिथक सश्लेष अपने आप मे अनोखा है। 'उत्सवा' की कोई भी कविता उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। जैसे –

> "नित्य एक उपनिषद लिखा जा रहा है
> जो आख्यान होते हुए भी
> आख्यान नहीं है
> जो शतपथ होते हुए भी ब्राह्मण नही है
> परन्तु, आक्ष्ण एक उपनिषद् लिखा जा रहा है।"

('उत्सव उपनिषद्' 'उत्सवा' पृष्ठ–106)

इस काव्यांश में उपनिषद्, आरण्यक, आख्यान, शतपथ, और ब्राह्मण– ये सारे प्रयोग अपने पारम्परिक अर्थ का अति क्रमण करते है। और एक नयी औपनिषदिक सृजनात्मकता का सूत्रपात करते है। इसी प्रकार –

> "एक दिन मनुष्य सूर्य बनेगा
> क्योंकि वह आकाश में पृथिवी का
> और पृथिवी पर आकाश का प्रतिनिधि होगा।
> मनुष्य के इस देवत्व के माध्यम से ही

यह सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वरत्व प्राप्त करेगी
मनुष्य का अभिषेक
देवत्व का ही नहीं ईश्वरत्व का भी अभिषेक है।
इसीलिए होने दो अभिषेक।।
मनुष्य मात्र का होने दो अभिषेक।।"

('अभिषेक–पुरूष' 'उत्सवा'. पृष्ठ–111)

इन काव्य पंक्तियों मे भाषा और सवेदना का इतना गहरा सश्लेष है कि एक ओर ये मनुष्यता के चरम उत्कर्ष का सदेश देती हैं तो दूसरी ओर पृथ्वी आकाश और सूर्य की सम्पूर्ण बिम्बात्मकता को व्यजित करते हुए नरेश मेहता की काव्य वैष्णवता का आख्यान करती है।

'उत्सवा' की एक अत्यन्त सशक्त कविता है 'लीला–भाव।' पूरी कविता अपने औपनिषदक बिम्बो के द्वारा, जो जितने बिम्ब है उतने ही मिथक, पाठक की चेतना को एक ऐसे उर्ध्व फलक पर खीच जे जाती है जहॉ धरती उसके बहुत नीचे छूट जाती है।

"हमारी आयु के ये वस्त्र
ये विभिन्न वर्ण मात्राएॅ
थे विनम्र वनस्पतियॉ
ये कामातुर नदियॉ
हमारे जीवन की
भाषाओं की
पृथ्वी की
और पदहीन पदार्थो की स्वाहा–यात्राएॅ होती है।
आकाशो के भी आकाश के वेदी पर रखे
सृष्टि के इस हवन कुण्ड मे

यह कौन पचानन

अहोरात्रि आह्वान कर रहा है?

अनन्त आयामी समय की समिधाएँ डाली जा रही है।

जो समस्त जलो का आचमन कर रहा है।

जिसने प्रकाश का त्रिपुण्ड लगा रखा है।

जो आकाश पर पैर रखकर

हवाओ को ब्रह्माण्ड में सुखा रहा है

और जो ध्वनियो को टिटकारता हुआ

गायो के झुण्ड सा

दिशाओ के बाडे से बाहर

के भी ब्रह्माण्ड मे ले जा रहा है

उस अग्नि के संग धू जटित का यह कैसा लीला भाव है।

सद् किसका लीलाभाव है ।"

('लीला भाव': 'उत्सवा' · पृष्ठ 97–98)

बिम्ब और मिथक के ये संश्लेष एक ऐसे विस्फोट सरीका है जहॉ पाठक केवल अभिभूत ही नहीं होता, वह पूरी तौर पर चमत्कृत हो उठता है। यहॉ उसकी चेतना मे वह पंचानन कौधने लगता है जो आकाशो के भी आकाश की वेदी पर पांव रखकर सृष्टि के हवन कुण्ड में अहोरात्र आह्वान कर रहा है। उसी मनस चेतना के सामने वह अग्नि के केशिन धूल जटित नाच उठता है जो आकाश पर पैर रखकर हवाओ को ब्रह्माण्डो मे सूखाता है और ध्वनियो को गायों के झुण्ड सा टिटकारता हुआ दिशाओं के बाडे से बाहर निकालकर ब्रह्माण्ड के भी ब्रह्माण्ड से बाहर ले जाती है। नरेश मेहता की काव्य भाषा का यह चरम उत्कर्ष है जहॉ औपनिषदिक बिम्ब और मिथक एक दूसरे मे संक्रमित होते चलते हैं और एक ऐसी मिथकीय दृश्यावनियो को प्रस्तुत करते है जहॉ

पाठक पूरी भारतीय और औपनिषदिक परम्परा का दृश्यावलोकन करने लगता है।

अध्याय-3

रघुवीर सहाय: समाचार भाषा की काव्यमयता

'दूसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य मे अपनी कविता की बनावट को स्पष्ट करते हुये रघुवीर सहाय ने लिखा है –"मैने अपनी कविता के इस चरण तक पहुँचते–पहुँचते शैली मे ताल और गति के कुछ प्रयोग कर पाये है । ताल को साधारण बोल–चाल की ताल के जैसा बनाने में कुछ कविताओं मे, जैसे 'अनिश्चय' और 'मुँह अँधेरे' तथा 'दुर्घटना' मे थोडी बहुत सफलता मिली है । हलॉकि उस कोशिश मे भी कही–कही उर्दू की गति की बधी हुई शैली का सहारा लेना पडा है । भाषा को भी साधारण बोल–चाल की भाषा के निकट लाने की कोशिश रही है, मगर उसमे भी कही–कही भाषा की फिजूलखर्ची करनी पडी ।"

('दूसरा सप्तक'–'वक्तव्य'–पृ0–138)

सुरेश शर्मा को दिये एक साक्षत्कार मे काव्यभाषा के सम्बन्ध मे रघुवीर सहाय कहते है– "मैं काव्यभाषा को न तो भाषा शास्त्री की तरह देख सकता हूँ और न आलोचक की तरह से । यह तो नही कहूँगा कि सबकुछ मै सहजभाव से कर देता हूँ और मुझे पता नही चलता । ऐसा तो नही है । मै जानता हूँ कि मै क्या करने की कोशिश कर रहा हूँ । बल्कि जैसा कि मैने आपसे एक और प्रश्न के उत्तर मे कहा था कि अपने वैचारिक आधार को मै जानता हूँ तो कविता करने के कारण जानता हूँ यानि कविता करते हुए मै अपने वैचारिक आधार को पहचानता चलता हूँ, जबकि यह भी सच है कि एक वैचारिक आधार पहले से रहता है । उसी तरह से यहाँ भी आवाजों की शक्ल मे बिम्बों की शक्ल में, शब्दो के अर्थों की शक्ल मे शिल्प का एक नमूना–कुल मिलाकर पूरी रचना के रख–रखाव, तौर–तरीके, रूझान, तथा शक्ल, सबके सन्दर्भ मे एक हलका सा कभी–कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट नमूना–रचना करने से पहले रहता है ।"

('रघुवीर सहाय का कवि कर्म'–सुरेश शर्मा–पृ0–149)

अपने कविता लिखने का आरम्भ और अपने उपर पडे हिन्दी के विशिष्ट कवियो के प्रभावों की चर्चा करते हुऐ 'दूसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य मे सहाय जी ने स्वीकार किया है – "मैने 1947 मे एक बार 'बच्चन' की कविताएँ पढी और उनकी वेदना से मेरा कण्ठ फूटा । तभी से लिखना आरम्भ किया । कुछ समय बाद माथुर के कुछ सफल और कुछ असफल रगो ने मुझे अपनी थोडी बहुत सामर्थ्य का बोध कराया और मैने अपनी कला के प्रति सजग होकर लिखने की कोशिश की ।

'पन्त' और 'निराला' का अगर असर हुआ तो बहुत टेढे तरीके से । अन्य आधुनिक कवियो मे 'अज्ञेय' और शमशेर बहादुर ने जिनकी बौद्धिक आत्मानुभूति और बोध गम्य दुरूहता किसी हद तक एक ही–सा प्रभाव डालती है– मुझे अपनी आगामी रचनाओ के लिऐ काफी तैयार किया है ।"

('दूसरा सप्तक' – पृ0–138)

शुरेश शर्मा ने रघुवीर सहाय द्वारा सृजित 'कामना' शीर्षक कविता को उनकी पहली सृजनात्मक अभिव्यक्ति कहा है । उनके अनुसार– "रघुवीर सहाय ने 1946 मे लिखना शुरू किया । पहली बार उनकी कविता 'आदिम संगीत' शीर्षक से 'आजकल' के अगस्त 1947 अक मे प्रकाशित हुई । वैसे उनकी पहली कविता 'कामना' शीर्षक से लिखी गई थी जो सम्भवत· कही छपी नहीं । कवि की उस समय की पुरानी डायरी पर इस कविता की रचना तिथि लिखी है : '7 अक्टूबर 1946' ।"

('रघुवीर सहाय का कवि कर्म' – 'सुरेश शर्मा' पृ0–1)

'दूसरा सप्तक' मे रघुवीर सहाय की छोटी–बडी चौदह कविताएँ सकलित है, जिनमें एक गजल भी है । इन कविताओं मे प्रेम, सौन्दर्य और प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित कविताओं की अधिकता है । यद्यपि काव्य–विकास की दृष्टि से इन कविताओं को कवि का आरम्भ ही कहा जायेगा । इन आरम्भिक कविताओ

मे कही उनकी वैयक्तिक अनुभूति दृष्टिगत होती है तो कही प्रकृति के सुन्दर चित्र–

> "लो, सहसा झर–झर कर पहला झोका आया
> हम बढे घरों की ओर तनिक जल्दी–जल्दी दौडे–दौडे ।
> दो गोरे–गोरे बलगर बैलो की गोई
> हो गयी ठुमककर खडी पकरिया के नीचे
> उड गयी चहककर नीबी की सबसे उँची ।
> फुनगी पर वैठी गौरैया
> फैली चुनरिया अटरिया चढ लायी उतार
> जल्दी–जल्दी घॉघर समेट घर की युवती ।
>
> ('दूसरा सप्तक' . 'पहला पानी' · पृ0 – 142)

'पहला पानी' शीर्षक इस कविता मे कवि ने अपने प्रकृति चित्रो मे प्राकृतिक सौन्दर्य और मनुष्य की स्थिति को एक साथ जोडकर अंकित करने का प्रयास किया है । ऐसे वर्णनो मे कवि की आत्मीयता और खुलापन दृष्टिगत होता है ।

'दूसरा सप्तक' के बाद 1960 ई0 मे भारतीय ज्ञान पीठ, काशी से उनकी रचनाओ का पहला स्वतन्त्र सग्रह 'सीढियो पर धूप मे' प्रकाशित हुआ, जिसके सम्पादक 'अज्ञेय' जी थे । इसमे कहानियॉ और लेख भी संकलित है । इसमें कुल 78 कविताएं है । इन कविताओं में रघुवीर सहाय के काव्यानुभव के अनेक आयाम खुलते है । अन्तर्वस्तु की विविधता की दृष्टि से यह संग्रह बडा ही समृद्ध है । इसकी भूमिका मे ही अज्ञेय जी ने लिखा है कि – "अपने छायावादी समवयस्को के बीच 'बच्चन' की भाषा जैसे अलग आस्वाद रखती थी, उसी प्रकार अपने विभिन्न मतवादी समवयस्कों के बीच रघुवीर सहाय भी चट्टानों पर चढ नाटकीय मुद्रा मे बैठने का मोह छोड़ साधारण घरों की सीढियो पर धूप में

बैठकर प्रसन्न है । यह स्वस्थ भाव उनकी कविताओ को स्निग्ध मर्म स्पर्शिता दे देता है – जाड़ो के घाम की तरह उसमे तात्क्षणिक गरमाई भी है और एक उपर खुलापन भी ।"

('सीढियो पर धूप मे' की भूमिका'– 'अज्ञेय का वक्तव्य' पृ0–5)

इस सग्रह मे प्रकृति धूप, पेड, खुशबू, फूल, बसन्त, मॉ, गौरैया, प्रेम और सौन्दर्य तथा स्त्री सम्बन्धी कविताए है । इन कविताओं मे कवि की उदार और मुक्त सवेदना तथा मानवीय रागात्मकता के दर्शन होते है –

"आज फिर शुरू हुआ जीवन
आज मौने एक छोटी सी सरल सी कविता पढी
आज मैने सूरज को डूबते देर तक देखा
जीभर आज मैने शीतल जन से स्नान किया
आज एक छोटी सी बच्ची आयी, किलक मेरे कन्धेचढ़ी
आज मैने आदि से अन्त तक एक पूरा मान किया
आज फिर जीवन् शुरू हुआ ।"

('आज फिर शुरू हुआ' – 'सीढियो पर धूप में' पृ0–165)

'सीढियो पर धूप मे' में संकलित 'आज फिर शुरू हुआ' कविता में कवि ने जिस क्षण को पूरी समग्रता से लिया है उसी को ईमानदारी के साथ वाणी दी है । शुरेश शर्मा ने उपर्युक्त कविता के विषय मे लिखा है – "जीवन की जिस स्वाभाविक रचानात्मक स्थितियों की खोज के द्वारा यहॉ कविता संभव की गयी है, उससे साधारण जीवन मे 'नया रस' तथा 'नया महत्व बोध' उत्पन्न हो रहा है । पूरी दिनचर्या से कविता मे जिन सामान्य स्थितियों का चुनाव किया गया है उसके प्रति कवि की सिर्फ आत्मीयता ही कविता में महत्वपूर्ण नही है बल्कि महत्वपूर्ण है यहॉ जीवन की सामायन्ताओं के बीच जीवन की स्वाभाविक रचनाशीलता की सार्थक पकड़ ।"

('रघुवीर सहाय का कवि कर्म'– 'सुरेश शर्मा'– पृ0–33)

'आत्महत्या के विरूद्ध' काव्य सग्रह रघुवीर सहाय की यश. काया का एक सशक्त आधार है । उनके काव्य–विकास की दृष्टि से यह सग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसमे 1960 से 1967 तक की कविताए सकलित है । यह उनका पहला स्वतंन्त्र काव्य–संग्रह भी कहा जा सकता है । यह संग्रह कवित के अपने व्यक्तित्व की खोज की एक बीहड यात्रा है । मनुष्य से नंगे वदन सस्पर्ष करने के लिए 'सीढियो पर धूप मे' कवि ने अपने को लैस किया था । बाद मे कवि का वही साक्षात्कार 'आत्महत्या के विरूद्ध' की कविताओं मे एक चुनौती बनकर उभरा है । अपने को किसी भी कीमत पर सम्पूर्ण व्यक्ति बनाने की लगातार कोशिश के साथ रघुवीर सहाय ने पिछले दौर से निकलकर 'आत्महत्या के विरूद्ध' मे एक व्यापक ससार मे प्रवेश करने की कोशिश की है । इस ससार मे भीड़ का जंगल है, जिसमें कवि एक साथ अपने को खो देना चाहता है और पा भी लेना चाहता है । इस सग्रह मे सामान्य मनुष्य की दयनीय स्थिति, राजनीतिक अवसरवाद लोकतन्त्र की हास्यास्पद स्थिति, रोज–रोज थोडा–थोडा मरते हुए मतदाता की व्यथा कथा तथा देश को पतन के गर्त में ले जाने वाले नेताओ के प्रति अत्यधिक आकोश को पूरी तरह कविता का विषय बनाकर बडे ही साहस के साथ बेवाक ढग से प्रस्तुत किया गया है ।

'स्वाधीन व्यक्ति' शीर्षक कविता में कवि ने स्वतत्र भारत में सामान्य जन की वस्तु स्थिति को उसकी विडम्बनाओ, समूची विसंगतियों और व्यर्थताओ के साथ बडे स्पष्ट शब्दों मे खोलकर रख दिया है –

"खण्डन लोग चाहते हैं या कि मण्डन
या फिर केवल अनुवाद लिसलिसाता भक्ति से
स्वाधीन इस देश मे चौकते हैं लोग
एक स्वाधीन व्यक्ति से"

('आत्म हत्या के विरूद्ध' – 'स्वाधीन व्यक्ति'–पृ0–75)

'हॅसो– हॅसो जल्दी हॅसो' काव्य सग्रह मे सहाय जी की 1967 से लेकर 1973 तक की कुल 51 छोटी–बडी कविताएं सकलित हैं । इस सग्रह की कविताओ मे मुख्य रूप से शोषको द्वारा पूरी तरह से शोषित साधारण मनुष्य का त्रासद, उसका बेवस रूप, उसकी निरीहता, उसकी पीडा से कराहता रूप, उसकी दयनीय दशा, उसकी विडम्बना, उसकी अभाव से ग्रस्त जिन्दगी का चित्र है । नन्द किशोर नवल के शब्दों मे – "राजनीति 'हँसो–हॅसो जल्दी–हॅसो' की कविताओ का मुख्य विषय है, लेकिन इन कविताओ का असली नायक साधारण जन है, जो कविताएँ राजनीतिक है उनके पार्श्व मे भी साधारण जन ही खडा है, या फिर साधारण जन के नजरिये से ही कवि ने किसी राजनीतिक घटना या चरित्र को देखा है ।"

('रघुवीर सहाय की काव्यानुभूति और काव्य भाषा' – 'डॉ0 अनन्तकीर्ति तिवारी' –पृ0–34)

दमन और आतक से भरे वर्तमान समाज मे मुक्ति के अहसास की सबसे सहज और मानवीय अभिव्यक्ति 'हॅसी' आज विचित्र विडम्बनाओं का शिकार हुई है । 'हॅसी' के इस नये रूप को रघुवीर सहाय ने अक्सर अपनी कविता मे पहचानने की कोशिश की है । लोठार लुत्से से बातचीत के दौरान उन्होनें कहा भी है कि– "हॅसी को मैने आदमी की बदलती हुई हालत का सूचक जैसा मान लिया है और जहॉ भाषा से, उसकी भाषा से, उसको समझना उतना आसान नहीं होता है, वहॉ आप अक्सर देखते है कि आदमी की हॅसी से आप उसको समझ लेते है ।"

('रघुवीर सहाय का कवि कर्म'–'सुरेश शर्मा'–पृ0–125)

'हॅसो–हँसो जल्दी हॅसो' शीर्षक कविता इस विडम्बनापूर्ण हॅसी से साक्षात्कार का अन्यतम उदाहरण है –

"हॅसते–हॅसते किसी को जानने मत दो कि किस पर हॅसते हो
सबको मानने दो कि तुम परास्त होकर
एक अपनाने की हॅसी हॅसते हो जैसे सब हॅसते हैं बोलने के बजाय ।

x x x

बेहतर है कि जब कोई बात करो तब हॅसो
ताकि किसी बात का कोई मतलब न रहे ।"

('हॅसो– हॅसो जल्दी हॅसो' –'हॅसो– हॅसो जल्दी हॅसो' – पृ0–25)

रघुवीर सहाय की कविताओ मे सिर्फ शोषित जनो की विडम्बनापूर्ण हॅसी ही नहीं बल्कि शोषित वर्ग के प्रतिनिधियों की अश्लील और भयावह हॅसी भी सुनाई पडती है –

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हॅसे
लोकतत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हॅसे
सबके सब है भ्रष्टाचारी
कहकर आप हॅसें
कितने आप सुरक्षित होगे
मै सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हॅसें"

('हॅसो– हॅसो जल्दी हॅसो'–'आप की हॅसी' – पृ0–16)

1975 से लेकर 1982 तक की कविताओ का सग्रह 'लोग भूल गये है' नाम से राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताओं में जिन नैतिक एवं मानवीय मूल्यो को लोगो ने भुला दिया है और

सस्कृति के सभी नियमो की उपेक्षा करने का प्रयास किया है, उसी की याद दिलाने की कवि ने भरसक कोशिश की है । इस संग्रह की कविताए सामाजिक नैतिकता को बचाने का सन्देश प्रस्तुत करती है और समाज मे व्याप्त वैषम्य को समूल नष्ट करने के लिये भी एक अलग प्रेरणा प्रदान करती है । 'लोग भूल गये है' तक के अपने काव्य–विकास की यात्रा की बडी सूक्ष्म परख करते हुऐ रघुवीर सहाय ने इस सग्रह के अपने 'निवेदन' का आरम्भ करते हुये लिखा है – "इस सग्रह की रचनाएँ मेरे काव्य जीवन के जिस दौर मे लिखी गयी वह अभी हाल में शुरू हुआ और अभी निबटा नही है, दिखता है कि वह अभी चलेगा । मॅझधार मे या कहे कि बीच भॅवर मे लिखी हुई कविता प्रकाशित कर देने का यह मेरा पहला अवसर है । इसके पूर्व 'आत्महत्या के विरूद्ध' और हॅसो– हॅसो जल्दी हॅसो' दोनो एक–एक निष्कृति के सूचक थे । उसके पहले 'सीढियो पर धूप में' कविता के एक से अधिक पडावो तक सहेजकर ले जायी गयी उपलब्धियो का सचय था । उसके भी पहले 'दूसरा सप्तक' में आकलित रचानाएँ अत्यन्त प्राथमिक कविताओ के अभ्यासमूलक दौर से निकलते ही अपनी दुनिया मे पैर रखने के समय की कविताएँ थी अलबत्ता जैसा 'हॅसो– हॅसो जल्दी हॅसो' मे हुआ था, प्रत्येक संग्रह मे कुछ रचानाएँ कही तो एक दिशा मे चलने की तैयारी करके वह रास्ता छोड देने की निशानियाँ थी, कही भविष्य मे उस रास्ते को फिर पकडने के लिए पहचाने थी ।

('लोग भूल गये है' संग्रह के कवि के 'निवेदन' शीर्षक से उद्धृत)

'लोग भूल गये है' सग्रह की 'भविष्य' शीर्षक कविता मे अत्याचारी की पूरी जॉच पड़ताल की गयी है । निम्नांकित पंक्तियो में कवि सत्ताधारीयो के मनुष्य विरोधी दुहरे चरित्र की ओर इशारा करते हुये अवसरवादी भ्रष्ट शासन के लोगों के उपर कड़ा प्रहार करते हुए तथा वर्तमान स्थिति का सटीक चित्रण किया है –

"होशियार हल चल है बहुत गतिविधियॉ हैं
तीस साल से जो अध्यक्ष थे बने हुए
दो मुँही भाषा के बूते जो एक साथ
निर्भीक दिखते थे पाखण्डी भी थे
आज इन दो को छोड कुछ नही रह गया
अब वह बर्बरता के बूते अध्यक्ष है ।"

('लोग भूल गये है' – 'भविष्य'– पृ0–25)

'कुछ पते कुछ चिठ्ठियॉ' शीर्षक संग्रह सन् 1989 में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ था । इसमे सन् 1982 से लेकर सन् 1989 तक की कविताएँ संग्रहीत है ।

सहाय जी ने इस संग्रह में चिठ्ठयो के रूप मे जो अमर सन्देश लिखने का प्रयास किया है, वे चिठ्ठयॉ डाक से नहीं भेजी जा सकती है, क्योकि पते बदलते रहते है । इस सग्रह मे सकलित कविताएँ कोई व्यक्तिगत सन्देश नही है और न तो गश्ती परिपत्र । ये कविताएँ हर आदमी के पास पहुँचने और बोली या पढी जाने पर चिठ्यॉ बनती हैं ।

"पिछले संग्रह की कविताएँ लिखते समय सामाजिक चेतना और रचनात्मक अभिव्यक्ति के जिस दौर के बीच से कवि अपनी कविताएँ लेकर पाठको के सामने अपनी परीक्षा के लिए उपस्थित हुआ था वह दौर अभी समाप्त नहीं हुआ है । भाषा के अनेक प्रकारो पर राजनैतिक और व्यावसायिक कब्जे ने भाषा की रचनात्मकता को अनेक प्रकार से विकृत और कुंठित किया है ।"

('रघुवीर सहाय की काव्यानुभूति और काव्या भाषा'–डॉ0 अनन्त कीर्ति तिवारी–पृ0–57)

स्वयं रघुवीर सहाय ने इस सग्रह के निवेदन में लिखा है – "कवि का आज का संकट नया नही है । नया केवल सघर्ष के पिछले दौर मे पराजय

बोध है और साथ ही यह प्रश्न भी कि अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियो ने जब ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि मानवीय अधिकारो के लिए संघर्ष करने वाले अपनी हर लडाई मे उन्ही के आदर्शों की पूर्ति करते दिख रहे है, जिनके विरूद्ध सघर्ष है, तब रचनाकार इस सघर्ष मे अपनी हिस्से दारी कैसे निबाहे ।''

('कुछ पते कुछ चिठ्ठियॉ' के निवेदन से उद्घृत)

आर्थिक रूप से विपन्न सामान्य व्यक्ति के समूचे दु.ख दर्द को सहाय जी ने अपनी कविताओ मे वाणी दी है । 'अखबार वाला' शीर्षक कविता मे कवि एक अखबार बेचने वाले के सघर्ष को अपनी कविता का विषय बनाया है –

''धधकती धूप मे रामू खडा है
खडा भुल–भुल मे बदलता पाव रह–रह
बेचता अखबार जिसमें बडे सौदे हो रहे है ।

x x x

वहॉ जब छॉह मे रामू दुआऍ दे रहा होगा
खबर वातानुकूलित कक्ष मे तय कर रही होगी
करेगा कौन रामू.के तले की भूमि पर कब्जा ।''

('कुछ पते कुछ चिठ्ठियॉ'– 'अखबार वाला'–पृ0 75)

रघुवीर सहाय की मृत्यु के उपरान्त 1995 में राज कमल प्रकाशन से उनका अन्तिम कविता सग्रह 'एक समय था' प्रकाशित हुआ, जिसके सकलन कर्त्ता और सपादक सुरेश शर्मा है । इस सग्रह में 78 कविताऍ हैं । इन कविताओं का सकलन और सम्पादन करते समय सुरेश शर्मा ने यह महसूस किया कि सहाय जी की ये कविताऍ उनके सम्पूर्ण कविता लेखन का उपसहार हैं। ऐसा लगता है कि जैसे इन कविताओं मे वे अतीत के अपने सारे किए हुए पर टिप्पणी कर रहे हैं और अपने समय के सघर्ष की परिणति भी बता रहे हैं ।

इस संग्रह की अधिकाश कविताएँ रघुवीर सहाय के जीवन के अन्तिम चार–पॉच वर्षो की है। इन कविताओ मे कवि की मृत्यु के कुछ पहले की सोच को रेखांकित किया जा सकता है । एक तरह से इस संग्रह मे कवि के व्यक्तित्व की सम्पूर्णता को लक्ष्य किया जा सकता है ।

वर्तमान समय मे सत्ता और वाणी का द्वन्द तीब्रतर होता जा रहा है, भाषा के माध्यम से ही अपना विरोध प्रगट किया जा सकता है लेकिन शक्तिशाली शासन ने ऐसी स्थिति उत्पन्न की है कि कोई उसका विरोध करने का साहस ही न कर सके । 'प्रश्न' शीर्षक कविता की निम्नाकित पंक्तियॉ इसका अन्यतम उदाहरण है –

> "और उसने निडर होकर कहा
> आप जनता की जान नही ले सकते
> सहसा बहुत से सिपाही वहॉ आ गये ।"

('एक समय था'–'प्रश्न'–पृ0–85)

रघुवीर सहाय की काव्यभाषा की निम्नाकित विशेषताओ को रेखांकित किया जा सकता है –

1– सामान्य भाषा का काव्यभाषा मे रूपान्तरण

2– पत्रकारिता की भाषा का काव्यभाषा में रूपान्तरण

3– सपाट बयानी

4– व्यग

5– रघुवीर सहाय की कविता मे बिम्बात्मकता

सामान्य जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जिस भाषा का व्यवहार किया जाता है, उसे सामान्य भाषा कहते है । सामान्य भाषा और कविता की भाषा मे अन्तर होता है । पाल बेलरी की धारणा है कि सामान्य भाषा वहीं समाप्त हो जाती है जब उसे समझ लिया जाता है । सामान्य कथन

सूचनात्मक होता है, काव्यात्मक कथन सदेश परक । सामान्य भाषा के शब्द रूढ और सहिताबद्ध होते है । कवि उनहे नये सदर्भ और नयी अर्थ – छायाएँ देता है । काव्यात्मक संरचना मे रूढ शब्द भी नये मुलम्मे के कारण अद्वितीय और विशिष्ट बन जाते हैं । कुऑरी धूप, सॉवले तनाव, मधुमय अभिशाप, अधा चॉद इसी प्रकार के सन्देश परक प्रयोग है । इन प्रयोगों मे सर्जक की अनुभूति और पाठक के प्रति उसकी अभिवृत्ति ही उजागर नही होते बल्कि कविता की भाषिक सरचना आन्तरिक सन्देश परक मूल्यवत्ता के कारण स्थायी महत्व पा जाती है ।

('रघुवीर सहाय की काव्यानुभूति और काव्य भाषा' 'डॉ0 अनन्त कीर्ति तिवारी'–पृ0–104)

जीवन की समग्रतर अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील होने के कारण नयी कविता में भाषा का बोलचाल रूप खुले यह स्वाभाविक है । पिछले युगों की कविता उदात्त चरित्रो के उदात्त जीवन की उदात्त अभिव्यक्ति थी । नयी कविता उदात्त की अवहेलना नही करती, पर अब तक ज्यादातर उपेक्षित साधारण जीवन को केन्द्र में रखती है ।

('नयी कविताएँ' : 'एक साक्ष्य'– 'डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी'–पृ0–28)

"सामान्य भाषा का विवेचन करते समय शिष्टउच्चारण का मापदण्ड माना गया है कि बोलते समय यह अनुमान न लगाया जा सके, कि वक्ता भाषा क्षेत्र के किस प्रदेश से सम्बद्ध है । कुछ ऐसी ही कसौटी बोलचाल के परिनिष्ठित रूप के सम्बन्ध मे भी स्वीकार की जा सकती है । बोलचाल की स्वभावतः अनेक शैलियॉ हो सकती है – पुराने नामों को ले तो 'पंडिताउ' शैली, 'मुशी' शैली, 'बाजार' शैली आदि । पर यदि हम कहे कि बोलचाल वही परिनिष्ठित है जिसके बोलने वाले या लिखने वाले का क्षेत्र या वर्ग ज्ञात न हो सके तो शायद हम वस्तु स्थिति से दूर न होगे । इस दृष्टि से समकालीन कविता मे रघुवीर

सहाय आदर्श कहे जा सकते है । जहॉ तद्‌भवता और देसीपन न किसी प्रतिक्रिया मे है और न किसी आवेश मे, वह सिर्फ है और उसका होना अपने में पर्याप्त है ।''

('नयी कविताएँ. एक साक्ष्य' – 'डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी' पृ0–31)

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा की सबसे बडी विशिष्टता यह है कि उन्होने काव्यभाषा के उपकरणो–बिम्ब, प्रतीक इत्यादि का कम से कम इस्तेमाल किया है । रघुवीर सहाय ने बोल–चाल की भाषा को जो तरलता प्रदान की है, जो व्यजकता प्रदान की है, वही उनके काव्य भाषा की सबसे बडी ताकत है। उनकी कविता देखने मे तो बहुत सामान्य प्रतीत होती है लेकिन जब थोडी गम्भीरता से उसके परिवेश को ध्यान मे रखकर देखा जाता है तो उसका अर्थ बहुत गहरे भीतर तक प्रभावित करता है तथा उसकी व्यंजना को बढ़ा देता है ।

''फिर मिट्टी मे जीवन की आशा जागी है
गलते है दकियानूसी मिट्टी के ढेले
पिछली फसलो की गिरी पड रही है मेडे
सारे अन बोये खेतो की उजली धरती
अब एक हुई, स्वीकार कर रहीं है नव जल
गुरू आज्ञा–सा''

('दूसरा सप्तक' – 'पहला पानी'–पृ0–142)

'दूसरा सप्तक' में संकलित 'पहला पानी' शीर्षक कविता की साधारण सी दिखने वाली इन पंक्तियों में, कवि के प्रकृति प्रेम एवं ग्राम–जीवन के चित्रांकन के साथ–साथ एक गहरी व्यजना भी दृष्टिगत होती है। कवि दयिकानूसी विचार को समाज के स्वाभाविक विकास के लिए बाधक समझता है। वह उन नये विचारों को स्वीकार करने के लिये कहता है जिनसे समाज का विकास सम्भव है–

"लो होता श्रम का समय शेष
अब शीतल जल की चिन्ता मे
लगती बहुओ की भीड कुएँ पर
मँजी गगरियों पर से किरणे घूम–घूम
छिपती जाती पनिहारिन के सॉवल हाथो की चुडियों में
धीरे–धीरे झुकता जाता है शरमाये नयनों–सा–दिन

('दूसरा सप्तक'–'सांयकाल'–पृष्ठ–153)

'दूसरा सप्तक' मे सकलित 'सायकाल' शीर्षक कविता की सामान्य सी दिखने वाली पंक्तियो मे काव्य के वे सारे चमत्कार मौजूद हैं जिनसे कविता की उत्कृष्टता समझी जाती है। अस्त होते हुए सूरज की किरणे मद्धिम पडती जा रही है। कवि ने उसे 'पनिहारिन' के सॉवल हाथो की चुडियो मे छिपाया है। और दिन के झुकने को 'शरमाये हुए नयन' की सज्ञा दी है।

"लोग ही लोग है चारों तरफ लोग, लोग
मुँह बाये हुए लोग और ऑख चुँधियाये हुए लोग
कुढते हुए लोग और सहलाते हुए लोग
खुजलाते हुए लोग और बिराते हुए लोग
दुनिया एक बजबजायी हुई सी चीज हो गयी है।"

.('सीढियों पर धूप में'– 'दुनिया'– पृष्ठ–139)

'सीढियो पर धूप मे' संकलन की 'दुनिया' शीर्षक कविता की ये पक्तियॉ सामान्य भाषा का काव्य भाषा मे रूपान्तरण का एक सशक्त उदाहरण है। इन सामान्य से शब्दो मे एक गहरी व्यंजना है। कवि को अकर्मण्य और कायर लोगो से घिरी हुई यह दुनिया बजबजायी हुई सी प्रतीत होती है।

"बाघ मे दारार, पाखंड वक्तव्य मे
मिलावट दवाई मे, नीति में टोटका

अहकार भाषण मे, आचरण मे खोट हर हफ्तें मैंने विरोध किया

सचमुच स्वाधीन हो जाने का इतना भय, एक दास जाति मे।

('आत्मा हत्या के विरूद्ध'–'एक अधेड भारतीय आत्मा'– पृष्ठ–88)

'आत्म हत्या के विरूद्ध' की 'एक अधेड भारतीय आत्मा' शीर्षक कविता किसी भी काव्य के चमत्कारिक गुण से विहीन होने के बावजूद वर्तमान भारत की भ्रष्टाचार से पूरी तरह लिप्त तस्वीर को प्रस्तुत करने मे सक्षम है।

"पानी पानी

बच्चा–बच्चा

हिन्दुस्तानी

माग रहा है

पानी पानी

अपना पानी

अपनी बानी हिन्दुस्तानी

बच्चा बच्चा माग रहा है।

('हॅसो–हॅसो जल्दी हॅसो–'पानी–पानी'–पृ0–6)

'हसो हंसो जल्दी हसो' सग्रह की 'पानी–पानी' शीर्षक कविता की सामान्य सी दिखने वाली इन पंक्तियो मे सामान्य आदमी की लाचारी भी उभरी है और साथ ही साथ प्रभुता सम्पन्न शोषक वर्ग जो पानी पर अधिकार जमाकर बैठे हैं, उनसे बडे ही अधिकार पूर्वक पानी की माग भी है।

"मैं वही पास में बैठा था डरता सा अपने से

तुम जागीं जैसे ढॅारस बधा

और थोडी देर बाद तुम सो गयी

चेहरे पर दर्द उभर कर आया

छा गया

एक छोटे अक्षर मे छपी हुई पुस्तक–सा खुल गया
वह चेहरा।"

('लोग भूल गये है'–'नीद'–पृष्ठ–41)

सामान्य स्त्रियो के दु:ख दर्द को रघुवीर सहाय नें अपनी तमाम कविताओं मे वाणी दी है। 'लोग भूल गये है' सग्रह की 'नीद' शीर्षक यह कविता स्त्री के समूचे दर्द को अपने आप मे समेट ली है।

रघुवीर सहाय की भाषा खबर की भाषा है– नितात निरावरण और दो टूक। उसमे प्रतीकों और बिम्बो का घटाटोप उलझाव नही है। खबर में घटना और पाठक के बीच भाषा जितनी पारदर्शी होगी, खबर की सम्प्रेषणीयता उतनी ही बढेगी । सहाय जी अपनी कविताओ मे इसी भाषा का इस्तेमाल करते है।

('रधुवीर सहाय–प्रतिनिधि कविताएं'–'स0 सुरेश शर्मा' – पृष्ठ–6)

सहाय जी ने स्वयं कहा है कि वे साहित्यकार और पत्रकार दोनो को अलग करके नही देखते। उनके अनुसार दोनो का उद्देश्य एक ही है– "पत्रकार और साहित्यकार में कोई अन्तर है क्या? मानता हूँ कि नही है। इसलिए नही कि साहित्यकार रोजी के लिये अखबार में नौकरी करते है। बल्कि इसलिए कि पत्रकार और साहित्यकार दोनो नये मानव सबन्ध की तलाश करते है। साहित्यकार के लिए तथ्यों की जानकारी उतनी ही अनिवार्य है जितनी पत्रकार के लिए है, परन्तु उन तथ्यो का गतानुगत कम उसके लिए नही है, बल्कि तथ्यो के परस्पर सबन्ध को जना बूझकर तोडकर साहित्यकार उसे नये सिरे से कमबद्ध करता है और इस प्रकार नये सम्पूर्ण सत्य की सृष्टि करता है जो एक नया यथार्थ है। एक संभव यथार्थ है। पत्रकार के लिए यथार्थ वही है जो सभव हो चुका है। साहित्यकार के लिए वह है जो सभव हो सकता है ।

('लिखने का कारण'–पृष्ठ–177)

सहाय जी ऐसे कवियो मे नही है जो एक चली आ रही काव्य परम्परा को आगे बढाते है। वे ऐसे कवियो मे है जो बदले हुए समय की जरूरत के अनुसार कविता की भूमिका को नये उद्देश्य से जोडते है। ऐसे कवियो को पुरानी भाषा में युगान्तकारी कवि कहा जाता रहा है। रघुवीर सहाय भी अपनी कविताओ से एक नये दौर की शुरूआत करते है। यह दौर सहाय जी के अर्जित काव्य गुणो से बना है जिनके केन्द्र मे है– निवारण भाषा मे नई जीवन–स्थितियो की अभिव्यक्ति। सहाय जी का सौन्दर्य शास्त्र खबर का सौन्दर्यशास्त्र है। इसलिए उनकी भाषा खबर की भाषा है और अधिकाश कविताओं की विषय वस्तु खबर धर्मी।

('प्रतिनिधि कविताएः रघुवीर सहाय'–'स0 सुरेश शर्मा'–पृष्ठ–5)–(कविता में लिखी खबरें शीर्षक से उद्घृत)

"कहना होगा कि रघुवीर सहाय की कविताए एक गहरे अर्थ मे राजनैतिक चेतना लिए हुए है। यही नही, उन्होने अखबार की भाषा मे राजनीति लेकर उसे कविता मे गढा है। आज जबकि साहित्यिक रचना पर पत्रकारिता का दबाव बढता जा रहा है समाचार पत्रो से व्यवसायत जुडे कवि ने अखबार को कविता में रूपांतरित किया है। यहाँ फिर समस्या वही है, बोलचाल की भाषा को सप्रेषण के लिए अपनाने की । अखबार स्वभावत बोलचाल और दैनंदिन जीवन से जुड़ा हुआ है, और कवि वही से अपने अनुभव के लिए भाषा उठाता है। यहाँ जोखिम जितना अधिक है रचना की जड उतनी ही गहरी। अखबार, राजनीति, दैंनदिन जीवन– ये सामान्यतः कविता के प्रतिरोधी रूप माने जाते रहे हैं, उनके लिऐ गद्य और कथा साहित्य ही उपर्युक्त रचना–माध्यम समझे गये हैं। रघुवीर सहाय एक साथ इस व्यापक अनुभव परिवेश को बिना किसी ऊपर से दिखते उद्यम या कि प्रदर्शन के कविता बना देते है।"

('नयी कविताए· एक साक्ष्य'–'बोलचाल और सप्रेषण. संदर्भ रघुवीर सहाय'– पृष्ठ–42)

''कल जब घर को लौट रहा था देखा उलट गयी है बस
सोचा मेरा बच्चा इसमें आता रहा न हो वापस
टेलिविजन ने खबर सुनायी पैतीस घायल एक मरा
खाली बस दिखला दी खाली दिखा नही कोई चेहरा
वह चेहरा जो जिया या मरा व्याकुल जिसके लिए हिया
उसके लिए समाचारो के बाद समय ही नही दिया।''

('हॅसो–हॅसो जल्दी हॅसो'–'टेलिविजन' पृष्ठ–49)

हॅसो–हॅसो जल्दी हॅसो' सग्रह की टेलिविजन' शीर्षक इस कविता मे एक दुर्घटना को इस सन्दर्भ के साथ उद्घृत किया गया है कि सामान्य व्यक्तियों के जीवन का मूल्य सरकारी मीडिया के लिये कुछ नही है।

''मुझसे कहा कि मृत्यु की खबर लिखो
मुर्दे के घर नही जाओ, मरघट जाओ
लाश को भुगताने के नियम, खर्च और कुप्रबंध
–खोज खबर लिख लाओः
यह तुमने क्या लिखा– ''झुर्रियॉ उनके भीतर उनके
प्रकट होने के आसार,
ऑखो में उदासी–सी एक चीज दिखती है–''
यह तुमने मरने के पहले का वृत्तांत क्यो लिखा?''

('कुछ पते कुछ चिठ्ठियॉ'–'खोज खबर'–पृष्ठ–82)

'कुछ पते कुछ चिट्यॉ' संग्रह की 'खोज खबर' शीर्षक कविता की भाषा समाचार पत्र की भाषा है जो कवि के पत्रकार व्यक्तित्व की उपज है।

''फिर जाड़ा आया, फिर गर्मी आयी

फिर आदमियो के पाले से लू से मरने की खबर आयी:
न जाडा ज्यादा था न लू ज्यादा
तब कैसे मरे आदमी
वे खडे रहते है तब नही दिखते,
मर जाते है तब लोग जाडे और लू की मौत बताते है।''

('एक समय था'–'ठड़ से मृत्यु'– पृष्ठ–52)

'एक समय था' सग्रह की –'ठंड से मृत्यु' शीर्षक कविता की भाषा भी खबर की भाषा है। जो कवि के पत्रकार व्यक्तित्व की ही उपज है। पत्रकार–कवि रघुवीर सहाय अखबार मे लू और ठंड से मतदाता की मृत्य की खबर रचते हैं और कविता मे मृत्यु की ओर बढती जीवन–स्थितियों की खबर ।

''700 मर गये अखबार कहता है,
खॅडहर और लाश दूरदर्शन दिखाता है
बहुत सी खबरे मेरे अन्दर से आती हैं
सबको चीर कर हहराती–''

('एक समय था'–'खबरे' –पृष्ठ–53)

'एक समय था' संग्रह की 'खबरें' शीर्षक कविता में पत्रकार–कवि रघुवीर सहाय उस खबर की बात करते हैं जो अखबार या टी0 वी0 मे लिखने–दिखने से रह जाती है, लेकिन वह खबर कवि के भीतर से हहराती हुई फूटती है।

''सपाट बयानी' का अर्थ है सीधे–सीधे कहना। सपाटबयानी बोल चाल की भाषा को काव्य–भाषा में परिणत करके आविष्कृत किया जाने वाला कवि सुलभ गुहावरा है। इस शैली का सौन्दर्य यह है कि कविता जहॉ आम जिन्दगी का वार्ता प्रतीत होती है, वहीं इसके केन्द्र में सहज समाज का सारा स्वरूप दर्पण मे चित्र के समान स्पष्ट दिखाई देने लगता है। सपाट बयानी की बुनावट

सीधे वक्तव्यो की वाक्याशो द्वारा की जाती है, लेकिन इसमे इतिवृत्तात्मकता नही होती। यह एक आन्तरिक लयपूर्ण मानसिकता है।''

('रघुवीर सहाय की काव्य–भाषा और काव्यानुभूति'–'डॉ0 अनन्त कीर्ति तिवारी'–पृष्ठ–114)

सपाट बयानी को भाषा का एक प्रमुख गुण मानते हुये नामवर सिह कहते हैं– ''कविता मे सपाट बयानी का यह आग्रह वस्तुत गद्य सुलभ जीवन्त वाक्य विन्यास को पुन· प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके मार्ग मे बिम्बवादी रूझान निश्चित रूप से बाधक रहा है।''

('कविता के नये प्रतिमान'–'डॉ0 नामवर सिंह'– पृष्ठ–134–135)

सपाट बयानी से आशय सपाट और सरल गद्यात्मक नही है बल्कि कविता मे उस भाषा के प्रवेश से है जो अपनी शक्ति केवल बिम्बों, प्रतीकों और अप्रस्तुतो से ग्रहण करने के स्थान पर सीधे अनुभव की नाटकीयता से अधिक अर्जित करती है। अनुभव की नाटकीयता क्योकि जनसाधारण की सवादधर्मी बोलचाल की भाषा और उसके 'गद्य सुलभ जीवन्त वाक्य–विन्यास' में अनायास व्यक्त होती है और इसीलिए सपाट बयानी का आग्रह कविता मे इसी बोलचाल की भाषा पर अधिक निर्भर है। स्पष्ट है कि सपाट बयानी का तात्पर्य काव्यत्व का अभाव या महज गद्यात्मकता से नहीं है–यह अवश्य है कि इसमे काव्यत्व की स्थिति पारम्परिक बिम्ब–प्रतीक या अप्रस्तुत–विधान के जगह पर जनसाधरण की बोलचाल की सवादधर्मी भाषा और उसके 'गद्य सुलभ जीवंत वाक्य विन्यास' की सहज नाटकीयता और तनाव मे निहित है। सातवे दशक मे सपाटबयानी के सर्जनात्मक दोहन का आर्दश उदाहरण रघुवीर सहाय की कविता में दृष्टिगत होता है। ऊपर से देखने पर अत्यन्त सरल तथा गद्यात्मक लगने वाली उनकी भाषा बोलचाल की उस भाषा की समस्त नाटकीयता और

तनाव को अपने भीतर समेटे हुए है जो सहज ही वस्तु–स्थितियो की विडम्बना का उद्‌घाटन कर देती है।

('रघुवीर सहाय की काव्यनुभूति और काव्य भाषा'–'डॉ0 अनन्त कीर्ति तिवारी'–पृष्ठ–114)

"नारी बिचारी है
पुरूष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है"

('सीढियो पर धूप में'–'नारी'–पृष्ठ–172)

'सीढियो पर धूप मे' सग्रह की 'नारी' शीर्षक कविता की सरल सी दिखने वाली इन गद्यात्मक पंक्तियो मे वह नाटकीयता और तनाव है जिससे पुरूष के अत्याचार से पीडित नारी की विडम्बना मूर्त हो जाती है। कवि के अनुसार मध्यवर्गीय नारी की यही नियति है कि वह शरीर से भूखी रहती हुई भी मन से प्रसन्न रहे । वह अपनी कारूणिक स्थिति मे ही सन्तुष्ट है।

"जिसको आगे चलकर राजकाज करना है।
दॉत मांज रखता है मुस्कराने के लिऐ
मुसकाकर प्राध्यापक परिषद ने मुझे ऑख मारी
गृह मन्त्री ने
कहते तुम ठीक हो चुप रहो
और मेरे साथ बेईमानी में शरीक हो
संघ रहे सघ रहे उसने कहा
भारत का। चाहे हर भारतीय हर भारतीय का
गुलाम रहे"

('आत्महत्या के विरूद्ध'–'एक अधेड भारतीय आत्मा'–पृष्ठ–88)

'आत्महत्या के विरूद्ध' सग्रह की 'एक अधेड भारतीय आत्मा' शीर्षक कविता की इन पक्तियो में न तो कोई बिम्ब है, न कोई प्रतीक, और अप्रस्तुत जैसा कुछ विशिष्ट भी नही है। किन्तु बोलचाल की भाषा मे रची गयी गद्यात्मक सी दिखने वाली इन सरल पक्तियो मे वह नाटकीयता और तनाव है जिससे भारतीय जनतंत्र मे सत्ता के छद्म और जन की उपेक्षा की विडम्बना मूर्त हो जाती है।

"मै अभी आया हूँ सारा देश घूम कर
पर उसका वर्णन दरबार मे करूँगा नही
राजा ने जनता को बरसो से देखा नही
यह राजा जनता की कमजोरियाँ न जानसके इसलिए मैं
जनता के क्लेश का वर्णन करूँगा नही दरबार में"

('हॅसो–हॅसो जल्दी हॅसो'– 'दो अर्थ का भय'– पृष्ठ–3)

'हॅसो–हॅसो जल्दी हॅसो' काव्य संग्रह की 'दो अर्थ का भय' शीर्षक कविता की इन सपाट पंक्तियो मे कवि ने शासन तन्त्र की आलोचना तथा शासक वर्ग के वास्तविक जन विरोधी चरित्र को उजागर किया है।

"हाथ मे शराब का गिलास ले
वे अपने मस्त हो जाने की कामना नही करते
आज की दुनिया के नष्ट हो जाने की करते है
जिससे वे निष्कंटक बच रहे।"

('कुछ पते कुछ चिठ्ठियाँ'–'विजय जयंती'–पृ0–81)

'कुछ पते कुछ चिठियाँ' सग्रह की 'विजय जंयती' शीर्षक कविता की इन सीधी–साधी पक्तियो में कवि ने हत्यारो, अत्याचारियों शोषकों के मूल चरित्र को उद्घाटित किया है।

व्यग्य नयी कविता की ऐसी प्रवृत्ति रही है जो कमश विकसित होती रही है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि – ''व्यग्य वह है जहॉ कहने वाला अधरोष्ठो मे हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो, फिर भी कहने वाले को जबाव देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना होता है ।''

('कबीर'. 'डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी'–पृष्ठ–103)

नयी कविता और साठोत्तरी से जुडे होने के कारण रघुवीर सहाय की कविताओ मे व्यग्यात्मक तेवर अधिक है । उन्होने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी बातो को लेकर अपने व्यंग्यात्मक तेवर की पुष्टि की है । अपनी सर्जन प्रकिया मे उन्होने जिस क्षेत्र को चुना उसमे व्याप्त पाखण्ड, ढोग और व्यर्थ के दिखावे पर व्यंग्य और छीटाकशी की तीखी धार प्रकट की है । रघुवीर सहाय औरो को चुपचाप सुनने वाले और उनकी आदतो पर नज़र रखने वाले उत्तम पर्यवेक्षक थे । यही कारण है कि उनका व्यग्य निरर्थक न होकर सार्थक ही सिद्ध होता है । उनके तीखे व्यग्य उनकी काव्य भाषा को अतिशय समृद्ध बनाते है।

''पढिये गीता
बनिये सीता
फिर इन सबमे लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर बार बसाइये।
होंय कॅटीली
आँखे गीली
लकडी सीली, तबियत ढीली
घर की सबसे बड़ी पतीली

भरकर भात पसाइये।"

('पढिये गीता'–'सीढियों पर धूप मे'– पृष्ठ–149)

'सीढियो पर धूप' में संग्रह की 'पढिये गीता' शीर्षक इस कविता मे व्यग्य के माध्यम से मध्यवर्गीय नारी की पूरी जीवन गाथा ही कवि ने कह दी है। मध्यवर्ग की नारी के विवाहोपरान्त सकीर्ण दायरे तथा उसकी विवशता को कवि वाणी देता है। मध्य वर्गीय स्त्री का पूरा जीवन सिर्फ घर की चहारदीवारी मे सिमट कर भोजन बनाने मे ही बीत जाता है–

"हर सकट भारत मे एक गाय
होता है
ठीक समय ठीक बहस कर नही सकती है
राजनीति बाद मे जहॉ कही से भी शुरू करो
बीच सडक पर गोबर कर देता है विचार"।

('आत्महत्या के विरूद्ध'–'एक अधेड भारतीय आत्मा' पृष्ठ–88–89)

रघुवीर सहाय ने लोकतन्त्र मे आस्था होने के कारण इस क्रूर राजनैतिक व्यवस्था की विसगतियो को अपनी कविता का विषय बनाया है। 'आत्महत्या के विरूद्ध' काव्य सग्रह की' 'एक अधेड़ भारतीय आत्मा' शीर्षक कविता की इन पक्तियो मे व्यग्य द्वारा कवि ने राजनैतिक परिस्थितियो का खुलासा किया है।

"हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली
गहने गढाते जाओ
सर पर चढाते जाओ
वह मुटाती जाये
पसीने से गन्धाती जाये घर का माल मैके पहुँचाती जाये।"

('आत्महत्या के विरूद्ध'–'हमारी हिन्दी'–पृष्ठ–83)

'आत्महत्या के विरूद्ध' सग्रह की 'हमारी हिन्दी' शीर्षक इस कविता मे जितना तीखा व्यग्य है, उतना ही तीव्र आत्मलोचना। यहाँ भाषा और हिन्दी क्षेत्र के मध्यवर्गीय जीवन को एक दूसरे मे मिला दिया गया है। पूरी कविता मे यह रूपक चलता है– सीधा और साफ।

"हॅसो हॅसो जल्दी हॅसो
इसके पहले कि वह चले जाए
उनसे हाथ मिलाते हुए
नजरे नीची किए
उनको याद दिलाते हुए हॅसो
कि कल भी तुम हसे थे।"

('हॅसो हॅसो जल्दी हॅसो'– 'हॅसो हॅसो जल्दी हॅसो'– पृष्ठ–26)

'हसो हसो जल्दी हॅसो' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में हित चिंतक की सलाह से यह व्यग्य स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि, समाज मे उपर्युक्त स्थितियो की हद तक दयनीय बनो तभी तुम ताकतवरों के समाज मे जीवित रह सकते हो। उन पराधीन स्थियो पर यह आत्यतिक व्यग्य है जिसमें आज हमे जीना पड रहा है।

"और आज जो बचपन मे उस गुलामी में पिसते हैं
जिसमें पिसते थे हम इस शोषक सभ्यता में शासक पक्ष में
मिल जाने के पहले
उनसे हम कहते हैं देखो हमको देखो हम पर विश्वास करो
हमने भी बचपन में दुःख ये उठाये है
ये प्रमाण पत्र है जिनके आधार पर हम अधेडपन मे
उस शोषण के साथ दे सकते है शान्ति से।"

('लोग भूल गये हैं'–'मुआवजा'–पृष्ठ–68)

'लोग भूल गये हैं' सग्रह की 'मुआवजा' शीर्षक कविता की इन पक्तियो मे वस्तु स्थिति की पूरी समग्रता को शब्द दिया गया है। वर्तमान समय की विसगतियो और विडम्बनाओ को व्यग्य के माध्यम से वाणी दी गयी है।

'क्यों कलाकार को नही दिखाई देती अब
गंदगी, गरीबी और गुलामी से पैदा?
आंतक कहॉ जा छिपा भागकर जीवन से
जो कविता की पीडा मे अब दिख नही रहा ?
हत्यारों के क्या लेखक साझीदार हुए
जो कविता हम सबको लाचार बनाती है?''

('आज की कविता'–'कुछ पते कुछ चिठ्ठियॉ'– पृष्ठ–13–14)

'कुछ पते कुछ चिठ्ठियॉ' सग्रह की ''आज की कविता' शीर्षक कविता की इन पंक्तियो में कवि ने कलाकार के प्रति अपनी खीज को व्यग्य के माध्यम से वाणी दी है।

''अंग्रेजों ने अग्रेजी पढाकर प्रजा बनाई
अग्रेजी पढ़ाकर अब हम राजा बना रहे है।''

('अंग्रेजी'–'एक समय था'–पृष्ठ–52)

'एक समय था' संग्रह की अंग्रेजी शीर्षक कविता मे कवि ने व्यंग्य के माध्यम से अग्रेजी भाषा के सामने हिन्दी की दयनीय स्थिति को सन्दर्भित किया है।

नयी कविता के अधिकाश कवियों की तरह बिम्ब रचना एव प्रतीक योजना रघुवीर सहाय की काव्य रचना की विशिष्टता नहीं है चूकि रघुवीर सहाय सपाट बयानी के कवि रहे है इसलिए वे बिम्बवादी नहीं हैं । यह निश्चित है कि बिम्ब रचना रघुवीर सहाय की काव्य–भाषा का कोई मौलिक उद्देश्य नही रहा है, फिर भी उनके काव्य सृजन में बिम्ब अनायास ही प्रवेश करते गये हैं।

उन्होने यह स्वीकार किया है कि कविता मे बिम्ब अपने–आप मे कोई उद्देश्य नही है। यह कविता मे जीवनानुभव को रचनात्मक और मूर्तिमत्ता मे सम्प्रेषित करने का मात्र उपकरण ही है। अपनी विल्कुल आरम्भिक दौर की कविताओ मे रघुवीर सहाय ने जीवन्त गत्यात्मक बिम्बो की सृष्टि की है–

"दूर क्षितिज पर महुओ की दीवार खडी है
जिस पर चढकर सूरज का शैताना छोकरा
झाक रहा है
चौडे चिकने पत्तो की ललछौर फुनगियो को सरकाकर
नीडो मे फिर लौटी मॅडराती पिडकुलियॉ"

('सायकाल'–'दूसरा सप्तक'– पृष्ठ–152)

'दूसरा सप्तक' मे सग्रहीत 'सायकाल' शीर्षक कविता की इन पक्तियो मे प्रकति के सम्पूर्ण बिम्ब मौजूद है। जिसमे गन्ध, गति, वर्ण, स्पर्श एव ध्वनि बिम्बो की व्यक्त और अव्यक्त रूप मे योजना है। 'महुआ' मे गन्ध, 'चिकने पत्तो, मे स्पर्श बिम्ब तथा 'ललछौर फुनगियो' में वर्ण बिम्ब झांक रहा है। 'मडराना' तथा 'लौटना' मे गति बिम्ब है। 'नीडो' मे फिर लौटी मॅडराती पिडकुलियॉ' में ध्वनि बिम्ब अनाभिव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हो जाता है।

"कितने सही हैं ये गुलाब
कुछ कसे हुए और कुछ झरने–झरने को
और हल्की–सी हवा में और भी जोखम से
निखर गया है उनका रूप जो झरने को है।"

('धूप'–'सीढियों पर धूप मे'– पृष्ठ–158)

'सीढियो पर धूप मे' सग्रह की 'धूप' शीर्षक कविता की इन पक्तियों मे कवि बोलचाल के सीधे से वर्णन मे बिम्ब की एक छवि दे रहा है। यहॉ वर्णन

और बिम्ब जैसे एक दूसरे मे घुल–मिल गया हो। इस तरह के चित्र–बिम्ब रघुवीर सहाय की काव्य–भाषा को अतिशय समृद्ध करते है।

"सिहासन उचॉ है समाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओ के, एक परिवार के
मुॅह बाये बैठे है लडके सरकार के
हल्की सी दुर्गन्ध से भर गया है सभाकक्ष"

('मेरा प्रतिनिधि'– 'आत्महत्या के विरूद्ध'–पृष्ठ–21)

'आत्महत्या के विरूद्ध' सग्रह की मेरा प्रतिनिधि' शीर्षक कविता मे किसी सामान्य सभा कक्ष का वर्णन भी है और किसी विशिष्ट सभाकक्ष का बिम्ब भी है। इन पंक्तियो मे वर्णन और बिम्ब के स्तरो की टकराहट अर्थ को असाधारण विस्तार देती है।

अपने बाद के काव्य संग्रहों मे सहाय ने पूर्णतया यथार्थवादी बिम्बो के द्वारा ही यथार्थ की पथरीली सतह को खोलने का प्रयास किया है। उनके यथार्थवादी बिम्ब औरतो की दुर्दशा से सम्बद्ध सारी कविताओ में उपलब्ध है।

"हाथ बालों पर नही जिनके कभी फेरा गया
बैठकर दो चार के सग
तजुर्बे अपने सुनाने का नहीं मौका मिला
औरतें वे सूखकर रह गयी.
उनकी बच्चियों ने जवॉ होकर दादियो की
काठियॉ पाई।"

('औरते'–'कुछ पते कुछ चिठ्ठियॉ'– पृष्ठ–44)

'कुछ पते कुछ चिठ्ठियॉ' संग्रह की 'औरते' शीर्षक कविता में औरत की लाचारी– बेबसी उसके समूचे दु:ख दर्द को मुकम्मल वाणी मिली है। 'दादियों की काठियॉ' मे पूर्णतया यथार्थवादी चित्र–बिम्ब लेकर कवि उपस्थित हुआ है।

काव्यभाषा के स्तर पर रघुवीर सहाय अपने समकालीनो मे एक महत्वपूर्ण रचनाकार है। अपने शिल्प के प्रति ये बडे सजग है। सरल भाषा मे सहज करूणा और जिन्दगी की शिरकत उनकी कविताओ की एक विशिष्ट पहचान है। रघुवीर सहाय की काव्य भाषा की सबसे बडी विशिष्टता यह है कि उन्होने काव्यभाषा के उपकरणों बिम्ब मिथक, प्रतीक इत्यादि का कम से कम इस्तेमाल किया है। उन्होने बोल–चाल की भाषा को जो तरलता व्यंजकता प्रदान की है, वही उनकी काव्यभाषा की सबसे बडी ताकत है। सीधी–सी दिखने वाली पक्तियो मे असाधारण अर्थ भर देना रघुवीर सहाय की काव्यभाषा की विशेषता है। सपाटबयानी के माध्यम से बोलचाल की भाषा मे ऐसी गहन व्यजना रघुवीर सहाय की कविता मे मिलती है जो उनको समकालीनों मे विशिष्ट स्थान दिलाती है। उनकी काव्यभाषा सरल, साफ–सुथरी, सहज व्यवहार की भाषा है। सीधी–सादी दिखने वाली भाषा को उसके परिवेश में देखने पर अर्थ बहुत गहरे भीतर तक प्रभावित करता है और उसकी व्यजना को बढा देता है। यही रघुवीर सहाय की काव्यभाषा की सबसे बडी ताकत है।

अध्याय-4

शमशेर बहादुर सिंह : काव्य-भाषा की झंकृतियाँ

"जा उठा के पढ ले कागज जिस पर मेरा शेर है,

देखना वह शेर है या दूसरा शमशेर है।

यह आत्म–स्तवन नही, शमशेर की रचना का सौ–फीसदी सच है। उनका सम्पूर्ण साहित्य आत्म–प्रतिरूप है– उनकी खूबियो–खामियो, विचार, अनुभव, कल्पना, सरोकार, विचलन, स्वीकार–अस्वीकार ,विकास, बेचैनी, आकाक्षा वैविघ्य, उदारता–सब कुछ स्वच्छ दर्पण के आगे रखा हो जैसे। खरापन और शुद्धता"।

(शमशेर बहादुर सिंह–प्रभाकर श्रोत्रिय–पृ0–101)

जीवन के कटुतम सघर्षो को लेकर उन्हे कविता में एकदम तरल बना सकना शमशेर के काव्य व्यक्तित्व की पहचान है और इस रचना क्षमता का बराबर अप्रदर्शन कवि का चरित्र। "शमशेर की कविताओं को समझने के लिए विश्लेषण अपेक्षित हो सकता है, विशेषण नहीं। उनकी कविताओ मे संगीत की मन. स्थिति बराबर चलती रहती है। एक ओर चित्रकला की मूर्तता उभरती है और फिर वह संगीत की अमूर्तता मे डूब जाती है। चित्रकला, सगीत और कविता धुल–मिलकर उनके यहॉ रचना संभव करते है। भाषा मे बोलचाल के गद्य का लहजा, और लय में संगीत का चरम अमूर्तन इन दो परस्पर प्रतिरोधी मनः स्थितियों को उनकी कला साधती है यही कारण है कि जागतिक सदर्भो के कम से कम रहने पर भी हमे एक सम्पूर्ण रचना –संसार दिखाई देता है।"

('नयी कविताऍः एक साक्ष्य': 'कुछ कविताऍ': पृष्ठ–73)

अपनी कविता और अपने ऊपर पडे प्रभावों के बारे में 'वक्तव्य' मे कवि का कथन है– "अपनी कविता मे मेरी खास कोशिश यह रही है कि हर चीज की, हर भावना की जो एक अपनी भाषा होती है, जिसमें वह कलाकार से बातें करती हैं, उसको सीखूँ। इस तरह की कोशिश जहॉ–जहॉ भी कामयाब होती

देख सका, मैंने उस से असर लिया, ज्यादातर अँगरेजी की मौजूदा कविता से, खास तौर से टेकनीक मे।"

('दूसरा सप्तक'· 'वक्तव्य'· पृष्ठ–85)

आगे इसी 'वक्तव्य' मे उन्होने लिखा है–"मेरी भावनाओ पर सबसे गहरा असर पडा है 'परिमल' और 'अनामिका' का । पन्त ने भी मुझे पहले–पहल कविता की भाषा दी । उर्दू गजलियत और उलझे हुए भावों को लिए हुए सपनो की सी चित्रकारी और कुछ चलती हुई लयों और इधर आकर बात–चीत के लहजो और उसके उतार–चढाव को भी मैने अपनी कविता के रूप और छन्द का आधार बनाना चाहा है।"

('दूसरा सप्तक': 'वक्तव्य'.पृष्ठ–85)

शमशेर की कविताएँ पाठक को दुरूह लगती हैं। क्योकि उनकी कविता का अर्थ उन वर्णनो और चित्रों में नहीं मिलता जो कविता में दिखते है बल्कि उन सकेतों और इशारों मे होता है जो कविता के भीतर शब्दों, वाक्यो के नितांत निजी सघटन या आत्मा के भीतर से ध्वनित होता है। अपनी कविता की दुरूहता के सम्बन्ध मे कवि स्वयं कहता है।

"नश्शा मुझे नहीं होता है। नहीं होता
मुझे पीने वालो को
होता
है– मेंरी कविता को अगर वो उठा सकें और एक घूटॅ
पी सके
अगर'"

('एक नीला दरिया': 'चुका भी हूॅ नहीं मैं'. पृष्ठ–13)

यह चुनौती ही नही, वस्तु स्थिति है शमशेर के काव्य–संसार की। इसे स्वीकार करने के बाद, उनके काव्य ससार में गहरे डूबने पर यह अनुभव होता

है कि शमशेर ने एकान्त मे जैसे अपनापन ही सौप दिया है। यह अपनापन मगर नया प्रतीत होता है, क्योकि यह एक ऐसे कवि के द्वारा हम तक पहुँचता है, जो अपनी विलक्षण कविताओं से हमारी संवेदनाओ को गहराई से छूता ही नही, अपितु हमारे भीतर नई संवेदनाएँ भी जगाता है। इन सवेदनाओं की लय, इनके चित्र, बिम्ब, स्वरूप–सभी, कभी परिचित, कभी नये– से और कभी नये लगते हैं। परिचय–अपरिचय के इस दौर मे उनके रचना–ससार के और भी अनेक पहलू हमारे सामने खुलते जाते है।

अलग–अलग अर्थ स्तरों को खोलने वाली इनकी, अनके सम्भावना युक्त भाषा, उनकी कविता में निहित विभिन्न विरोधाभासो को सामने लाती है। एक विशेष सर्जनात्मक सजगता के साथ उनका पाठक उनकी कविता से मुखातिब होता है।

'दूसरा सप्तक' मे पहली बार कवि शमशेर प्रकाशित हुए। यद्यपि वे बहुत दिनो से कविताएँ लिख रहे थे । इनकी कविताओ को देखकर उनके काव्य–ससार की निर्मित होने वाली सम्भावनों का अनुमान होता है। इसमे उनकी कुल बीस रचनाएँ संकलित हैं जिसमे से अधिकांश बाद के सग्रहों मे शामिल कर ली गयी हैं। 'दूसरा सप्तक' मे छपा उनका 'वक्तव्य' उनकी कविताओं के बारे में और साथ ही नयी कविता के बारे मे उनके दृष्टिकोण को जानने की दृष्टि से आज भी बहुत महत्वपूर्ण है।

इनका पहला स्वतन्त्र काव्य सग्रह 'कुछ कविताएँ' 1959 मे प्रकाशित हुआ। इस सग्रह की कविताओ का चयन जगत शखधर ने किया है। इसमें कुल 36 कविताएँ है। शमशेर का समग्र गीतिस्वरूप यहाँ प्रकट नही होता, इस अर्थ में कि केवल अछान्दस रचनाएँ ही इसमे सकलित हैं। शमशेर प्रयोगशील हैं, यह बात इसमें लक्षित होती है।

'कुछ और कविताएँ' नाम से 1961 मे इनका दूसरा काव्य सग्रह प्रकाशित हुआ। इसमे कुल 49 कविताएँ सग्रहीत है। इन कविताओ का चयन उन्होने स्वंय किया है। विषय–वैविध्य और शिल्पगत विशेषता दोनो ही दृष्टियों से यह उनका उत्तम काव्य संग्रह माना जा सकता है। इसमे एक ओर जहॉ 'टूटी हुई, बिखरी हुई' व 'सावन' जैसी उत्कृष्ट प्रेम रचनाएँ है, वही 'बात बोलेगी' और 'वाम वाम दिशा' जैसी प्रगति वादी विचार धारा से प्रभावित रचनाएँ भी है। कुछ रचनाएँ ऐसी है जो सुरियल भावसृष्टि को भी प्रस्तुत करती हैं। इसमे उनके गीत, गजल, सॉनेट, रूबाई सभी समाविष्ट है।

1975 ई0 मे उनका तीसरा काव्य संग्रह 'चूका भी हूँ नही मै' प्रकाशित हुआ। इसके चयनकर्त्ता भी जगत शखधर है। इस संग्रह मे कुल 50 कविताएँ सकलित हैं। इसमे अछान्दस रचनाएँ ही हैं। अन्य सग्रहो की तुलना में इस सग्रह की अधिकतर रचनाएँ उनकी सामाजिक अभिमुखता को प्रकट करती है। शिल्प प्रयोग की दृष्टि से 'दो मोती कि दो चन्द्रमा होते' उनकी विशिष्ट रचना है। इस तरह प्रयोग धार्मिता, उनके इस संग्रह की भी विशेषता बन जाती है।

1980 मे राजकमल प्रकाशन द्वारा उनका चौथा काव्य संग्रह 'इतने पास अपने' प्रकाशित हुआ। यह कुल 33 कविताओ का संकलन है। इस संग्रह द्वारा कवि शमशेर एक तरह से अपना स्थायी परिचय देते हैं। उनकी चेतना का विकास किस दिशा मे हुआ है यह इस सग्रह की रचनाओ से जाना जा सकता है। इस सग्रह की पहली ही कविता 'संध्या' उनकी प्रयोग धर्मिता को स्पष्ट कर देती है । इस संग्रह की अधिकतर कविताएं कला, साथी कलाकारों की कला का स्वीकार, साहित्य और समय के चिन्तन पर है। साथ ही मृत्युबोध सम्बन्धी रचनाएँ हैं जो उनका प्रिय विषय रहा है। कवि को समझने का बहुत पैना सुराग ये कविताएँ देती है।

1980 में ही उनका 'उदिता' काव्य सग्रह भी प्रकाशित हुआ। यह एक प्रकार से कवि की अभिव्यक्ति के सघर्ष का कवित्वपूर्ण दस्तावेज है। इसमे संकलित रचनाओ पर छायावाद और प्रगतिवाद का प्रभाव देखा जा सकता है। साथ ही इसमे ऐसी भी रचनाएँ है जो विशिष्ट 'शमशेरी अन्दाज' को स्थापित करने का आरम्भिक बिन्दु बनती है। यही बाद में चलकर शमशेर की कविता का स्थायी गुण बन गया। ये रचनाएँ उनके कवि स्वभाव का परिचय देती है।

1981 ई0 में 'बात बोलेगी' काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। कुल 48 रचनाओ का यह सकलन घटना या विषय–साम्य, की दृष्टि से दो खण्डो और सात विभागों मे बटॉ है। उनकी वे लगभग सभी रचनाएँ इस संकलन में संकलित है जो देश के स्वतन्त्रता– आन्दोलन या मार्क्सवाद से सम्बन्धित हैं। कुछ शोकगीतो का भी इसमें समावेश है जो उनके उत्कृष्ट शोकगीतो मे गिने जा सकते है।

कवि शमशेर का अन्तिम काव्य सग्रह 'काल तुझसे होड़ है मेरी' सन् 1988 मे प्रकाशित हुआ। इसमें पिछले दस–पन्द्रह सालों में लिखी गई रचनाएं संकलित है। इनका चयन रंजना अरगडे का है। इन रचनाओं के बारे में स्वयं शमशेर का कहना है– "मैं सदा ही अपने मानसिक परिवेश को चित्रित करता रहा हूँ। परिवेश के साथ उसके माहौल को भी 'अपने पास' 'इतने पास अपने' खींचता रहा हूँ कि मेरा अन्दरूनी व्यक्तित्व, अन्दरूनी कवि और चित्रकार अपने अक्स को उसमें उतरने से बाज नही रख सके। ....गालिब का शेर है–

"फरियाद की कोई लय नहीं है।
नाला पाबन्दे– नै नही है।।"

कोई बॉसुरी बजा रहा है,– बजा नहीं रहा है, अपने दुखते हुए जख्म को सहला रहा है। 'नाला' यानी आह–कराह रोना धोना। 'नै'– बॉसुरी। बॉसुरी कभी अन्तर की आह–कराह को बांध नही सकती, क्योंकि 'नाला' बॉसुरी बजाने की

कला के अधीन नही है, इससे आजाद है। इसी आजादी की खोज मेरी कविता है।''

('सीधी सी बात है' 'काल तुझसे होड है'. पृष्ठ–8)

इसी 'सीधी सी बात है' मे वे आगे कहते है– ''मरी कविता के निर्माण मे आस–पास की साधारण सी वस्तु भी या कोई ऐसा व्यक्ति जो एकाएक मेरी कविता के पथ में खडा हो जाता है, मै उसको भी अपने रग मे लपेट कर अपनी कविता मे शामिल कर लेता हूँ। इसके बाद जो कविता का विकास होता है वह रचना की अपनी शर्तो पर होता है। मेरी अन्दर की अनुभूतियाँ झूठी न पडे इसलिए मै उस सामग्री मे और कुछ जोड देता हूँ और इस तरह कविता में एक नया पात्र आ जाता है, जिसका पहले मुझे आभास भी नहीं था।''

('सीधी सी बात है' 'काल तुम्हारे होड है' पृष्ठ–8–9)

ऊपर शमशेर के काव्य–विकास की एक झलक प्रस्तुत की गयी है। उस पूरी काव्य–यात्रा मे पाठक को शमशेर की काव्य भाषा की अनेक विशिष्ठिताओं से साक्षात्कार होता है। शमशेर जितना अपने शब्दों से बोलते हैं उतना ही शब्दों के बीच के अन्तराल से। शमशेर के शब्द केवल अर्थ की ही सृष्टि नही करते बल्कि उनमें गहरी गूँजे और अनुगूँजे होती है। उन गूँजों में जहाँ एक ओर वर्तमान का समय होता है वही उसमें इतिहास की झकृतियाँ भी। शमशेर की काव्य भाषा में एक गहरा लयात्मक तत्व है। लय उनके काव्य संवेदना की एक गहरी आन्तरिक सत्ता है। वे लय की सूचना करते है। और लय का आविष्कार करते है। लय मे से ही नये–नये अर्थो की सृष्टि होती है। उनके काव्य भाषा मे एक विचित्र प्रकार की झंझनाहट जैसे उगॅली से वीणा के तार छेड़ देने पर एक राग–रागनियो की सृष्टि होती है उसी प्रकार शमशेर का शब्द–विन्यास नयी–नयी झंकृतियाँ उत्पन्न करते है। शमशेर की कविता एक ऐन्द्रजालिक सरचना की तरह पाठक के सामने उभरती है। वे अपने शब्द विन्यास मे जिन

अन्तरालो को छोडते हैं उन्हें भरने का काम पाठक स्वंय करता है और इस प्रकार हर सवेदनशील और सृजनशील पाठक उनकी कविता से नये–नये अर्थो की उपलब्धि करता है। शमशेर के काव्य का बिम्ब–विधान भी बहुत असामान्य है। उनके बिम्ब– कही दृश्य है तो कही श्रव्य, कहीं वे सुगन्ध विखेरते हैं, तो कहीं स्पर्श का बोध कराते हैं। .

शमशेर की काव्यभाषा में झंकृतियाँ:–

डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने एक जगह लिखा है–" साधारण बोलचाल मे शब्दों का अर्थ निश्चित और सीधा होता है, घण्टे की तरह टन–टन। साहित्य मे उसी शब्द का अर्थ अपने पूरे वैविध्य मे तारो की झकार के साथ उभरता है। पर भाषा मे की यही झंकार बिना शब्दों के आपस मे टकराहट से नहीं बनती इसीलिए बोलचाल का एक शब्द भी ('आओ',–'चलें' 'अच्छा' याकि 'सुनो' भी) अर्थ देगा। पर कविता बिना शब्द क्रम के नही बनेगी।"

('सर्जन और भाषिक सरचना'· 'डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी'–पृष्ठ–24)

कविता में प्रत्येक शब्द एक दूसरे के पास रख देने से उसका अर्थ कैसा ध्वनित या झकृत होता है, यह उनकी आपसी रगड से पता चलता है। शब्द अर्थ देता है, पर मात्र यह अर्थ कविता में प्रेय नहीं है। कविता मे तो रगड़ से उत्पन्न अर्थ की अपेक्षा व्यंजनात्मक अर्थ ही प्रेय रहता है। "शब्दो की रगड़ से अर्थ वैसे ही व्युत्पन्न होते हैं। जैसे लकडियो को जलाकर ऋषि अग्नि जलाते हैं।"

(डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी)

भाषा के इस महत्व का स्वीकार शमशेर के यहाँ भी है। उनके पूरे काव्य संसार को समझने पर इस बात् की बार–बार प्रतीति होती है कि उनकी प्रकृति शब्दों की जडों तक जाने की है। 'विवेचना' की एक गोष्ठी में साही जी ने कहा था कि "शमशेर की कविताओ में ऐसे शब्द साथ–साथ 'हलकी मीठी

चा–सा दिन'–'हॅसी का फूल', 'मौत के रगीन पहाड', 'अगोरती विभा', 'कागजी विस्मय', 'सुलगता हुआ पहरा' आने लगते है जिनके साहचर्य की कल्पना पहले नहीं की गई थी। 'सांस की गगा', 'मोतियों को चबाता हुआ' गुल जैसे प्रयोग सिर्फ चौकाने वाले करिश्मे नही लगते, बल्कि गूजते हुए अर्थ से भर जाते है। कविता शब्दो और शब्दो के सयोग से नही बनती बल्कि शब्दो का जाल जो यथार्थ पर फेका जाता है, उससे बनती है। यह फेका हुआ जाल ही अर्थ है।

('छॅठा दशक'· 'विजय देवनारायण साही'· पृष्ठ–218)

"हलकी मीठी चा– सा दिन
मीठी चुस्की –सी बाते
मुलायम बाहों– सा अपनाव।
पलको पर हौले–हौले
तुम्हारे फूल–से पॉव
मानों भूलकर पडते
ह्दय के सपनो पर मेरे।"

('दूब'· 'कुछ कविताऍ'·पृष्ठ–36)

अथवा

"जो कि सिकुडा. हुआ बैठा था, वो पत्थर
सजग–सा होकर पसरने लगा
आप से आप।"

('सुबह': 'कुछ कविताऍ': पृष्ठ–44)

अथवा

"वो हमारे सांस के सूर्य।
सास की गंगा
अनवरत बह रही है।

तुम कहाँ डूबे हुए हो?''

('रात्रि'· 'कुछ कविताएँ' पृष्ठ–45)

अथवा

''हे अगोरती विभा,

जोहती विभावरी।

हे अमा उमामयी,

भावलीन बावरी।

मौन–मौन मानसी

मानवी व्यथा भरी।''

('धनी भूत पीड़ा'· 'कुछ कविताएँ'. पृष्ठ–58)

अथवा

''धूप कोठरी के आइने में खडी

हस रही है

पारदर्शी धूप के पर्दे

मुस्कराते

मौन आगन मे

मोम–सा पीला

बहुत कोमल नभ''

('धूप क़ोठरी के आइने मे खड़ी है'. 'कुछ और कविताएँ'

पृष्ठ–117)

अथवा

''हंसती मौन विद्युत–सी , ऑखों मे

बोलती अकाट्य

नियम–सी, मौलिक। हमारे

तुम्हारे

बीचोबीच

खडी मूर्त लय–सी

अमर।''

('हवा सी एकदम पतली': 'इतने पास अपने' पृष्ठ–18)

उपर्युक्त उद्धरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि शमशेर अलग–अलग शब्दों को पास या दूर रख करके अपनी कविता की अल्प छायाओ का विस्तार करते है। अलग–अलग बिम्बो की अलग–अलग अर्थ छवियॉ हैं। एक सिकुडे हुए पत्थर का सहसा क्रमश: बडा आकार प्राप्त करते रहना ऐसा बिम्ब है– अर्थ विस्तार का पाठक के मन मे एक चाक्षुष छवि प्रदान करता है। डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी की यह उक्ति बहुत ही सार्थक और सटीक है कि ''शमशेर के शब्द–विन्यास को जरा–सा छूने पर वैसी ही झकृतियॉ पैदा होती है जैसा वीणा के तारो को उगुलियों से छेडने पर होती है।''

शमशेर की कविता का बिम्ब–विधानः–

नयी कविता की एक विशिष्ट पहचान है बिम्ब यह वह विशिष्ट तत्व है जो कविता की रचना प्रक्रिया का एक अग है। जो हमारी ऐन्द्रिक अनुभूति को समृद्ध और समृद्धतर करता है। शमशेर की कविताओ में बिम्ब उनकी कविता के अर्थ विकास मे योग देते है और इसीलिए उनके बिम्ब कई बार वर्गीकरण की सीमा लांघ जाते है। शमशेर की रचना प्रक्रिया जटिल है और अभिव्यक्ति संकेतात्मक, इसीलिए उनके बिम्ब अधिकतर सकुल होते हैं। वे ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय दोनो अनुभूतियों को अपनी रचनाओ में बिम्बों के द्वारा प्रस्तुत करते हैं।

बिम्बो का जो संसार शमशेर की रचनाओ मे प्रकट हुआ है उससे उनकी कविताओ का सौन्दर्य व्यक्त होता है। उनके रचना ससार मे 'शाम, 'समुद्र', 'दिवस', 'सूर्य', 'आकाश', 'छितिज', 'नदी', 'धूप', 'लहरें' इत्यादि बिम्बात्मक अभिव्यक्ति पाते है। उनकी कविताओं मे अनेक रग है। वैसे तो सारी रग–सृष्टि हल्के रगो की है, पर एक सावलापन और गहरापन सतत रहता है। हल्की रेखाओ और रगो से वे ऐसा प्रभाव उत्पन्न करते है कि पाठक के मन पर उसकी एक छाप अकित हो जाती है।

''प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ''

('ऊषा': 'कुछ कविताएँ': पृष्ठ–8)

'कुछ कविताएँ' संग्रह की 'उषा' शीर्षक कविता में प्रातः कालीन नीलिमा को बताने के लिए कवि ने 'नीले शख' का बिम्ब चुना है। कालिमा–युक्त शंख से मात्र रंग बताना हो ऐसी बात नही है। 'शख–ध्वनि' मांगल्य का प्रतीक है। तो जब नीले शंख सा आकाश है, तब वह मगलमय बेला है, यह बात सूचित हो ही जाती है।

''एक नीला आइना
बे–ठोस सी चादनी
और उसके भीतर
चल रहा हूँ मै। उसी के महातल के मौन में''

('एक नीला आईना बेठोस' : 'कुछ कविताएँ': पृष्ठ–13)

'कुछ कविताएँ' सग्रह की 'एक नीला आईना बेठोस' शीर्षक इस कविता मे आकश के लिए कवि ने 'बेठोस नीले आईनें' का बिम्ब दिया है जो ठोस नहीं बे–ठोस है क्योंकि कवि उसके भीतर चल सकता है। यहाँ आकाश भी बेठोस है और चांदनी भी। और इस बेठोस के भीतर चलते–चलते कवि भीतर–ही–भीतर

धंसते चले जाते हैं– गहरे तक।

"मैली हाथ की धुली खादी
सा है
आसमान
जो बादल का पर्दा है मटियाला घुँधला–धुँधला
एक सार फैला है लगभग
कही–कही तो जैसे
हलका नील दिया हो।"

('सावन' 'कुछ और कविताएँ' पृष्ठ–140)

'कुछ और कविताएँ' संग्रह की 'सावन' शीर्षक कविता की इन पक्तियों मे 'सावन के मटमैले' आसमान के लिए कवि ने 'मैली हाथ की' 'घुली खादी– सा' बिम्ब उपस्थित किया है। यहाँ 'हाथ की घुली' कहकर कवि ने एक अनगढ़पन का बोध कराया है और यह भी कि धुलकर एकदम वह शुभ्र नही हुई हैं 'खादी' कहने से एक खुर दुरे पन का भी अनुभव किया जा सकता है ।

इसी कविता में आगे कवि डूबते हुए सूरज को जो रंग दिया है, वह है–

"जैसे घोल गया हो कोई गँदले जल में
अपनी हल्की मेहदी वाले हाथ।"

शाम का समय है। डूबते सूरज का हल्का अहसास आसमान मे झलक रहा है। लेकिन गुलाबीपन ऐसा लग रहा है जैसे कोई नायिका अपने मेंहदी लगे हाथों को पानी मे घोल दिया हो।

"सच्चाइयाँ
जो गगा के गोमुख से मोती की तरह बिखरती रहती हैं
हिमालय की बर्फीली चोटी पर चादी के उन्मुक्त नाचते
परों में झिलमिलाती रहती है

जो एक हजार रगो के मोतियों का खिलखिलाता समन्दर है।
उमगो से भरी फूलो की जवान कश्तियॉ
कि वंसत के नये प्रभात–सागर मे छोड दी गयी हैं।''

('अमन का राग' 'कुछ और कविताऍं':पृष्ठ–18)

'कुछ और कविताऍं' सग्रह की 'अम्न का राग' शीर्षक इस कविता मे सत्य जैसे पवित्र मूल्य की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति है। सच्चाइयॉ– मानो गोमुख जैसे पवित्रतम स्रोत से विखरते मोती है। यहॉ सच्चाई हिमालय की ऊॅची बर्फीली चोटियो में चादी के उन्मुक्त परो की तरह झिलमिलाती है। हिमालय की बर्फीली चोटी मे चांदनी अर्थात एक ऊॅचाई के साथ–साथ श्वेतत्व का बोध। फिर एक चमक भी । उज्जवलता। सत्य में भी वही उॅचाई है, श्वेतत्व है। उज्जवलता है। चमक है ।

यहॉ सच्चाई हजार रगो के मोतियो का खिलखिलाता समुन्दर है। उस श्वेत रग में से ही मानें ये हजारो रंग फूट पडे हों। इसमे एक उल्लास है, विस्तार के साथ–साथ रगो की भी सृष्टि खडी हो जाती है। सम्भवत. कवि कहना चाहता है कि सत्य हमें उल्लास देता है, रंगों मे सराबोर करके हमारे व्यक्तित्व को विस्तार देता है।

''एक नीला दरिया बरस रहा है
और बहुत चौडी हवाऍ हैं
मकानात है मैदान
किस कदर ऊबड–खाबड
मगर
एक दरिया
और हवाऍ
मेरे सीने में गूॅज रही है।''

('एक नीला दरिया बरस रहा'· 'चुका भी हूँ नही मै'–पृष्ठ–9)

'चुका भी हूँ नही मै' सग्रह की 'एक नीला दरिया बरस रहा' शीर्षक कविता की इन पक्तियो में एक विशिष्ट प्रकार का बिम्ब उपस्थित होता है। नीला दरिया बह नही रहा है, बरस रहा है, अर्थात् यह दरिया की नही आकाश की बात है जो बादलो की उपस्थिति से फेनिल लहरो का आभास दे रहा है। 'हवाएँ चौडी है' में एक विस्तार का बिम्ब उभरता है। जो आगे चलकर मैदान और मकानात की उपस्थिति से ऊबड–खाबड हो जाता है।

''मै इस तरह मुस्कराया
जैसे शाम के पानी मे डूबते पहाड
गमगीन मुस्कराते है।''

('चेहरो की शामो में' . 'इतने पास अपने'. पृष्ठ–46)

'इतने पास अपने' सग्रह की 'चेहरो की शामों में' शीर्षक कविता की इन पंक्तियो मे कवि ने अपनी 'गमगीन' मुस्कराहट को 'शाम' के बिम्ब से बिम्बित किया है। डूबती हुई शाम में गहराते अन्धकार में डूबते जहाड़ जैसे गम्भीर और विवश लगते है–वैसे ही कवि मुस्कराता है।

''कत्थई गुलाब
दबाये हुए है
नर्म नर्म
केसरिया सावलाम मानो
शाम की
अगूरी रेशम की झलक
कोमल
कोहरिल
विजलियॉ–सी

लहराए हुए है"

('कत्थई गुलाब' 'इतने पास अपने' पृष्ठ–17)

'इतने पास अपने' सग्रह की 'कत्थई गुलाब' शीर्षक कविता की इन पक्तियो के सारे बिम्ब एक दूसरे मे इस प्रकार वलयित है कि उन्हे अलग–अलग करके देखना कविता के पूरे सौन्दर्य परिप्रेक्ष्य को खण्डित करना है। कवि का यह बिम्ब विधान वास्तव मे उसके चित्र–विधान की एक प्रकार की प्रतिछवि है। इस प्रकार का बिम्ब विधान उसी कवि के लिए सम्भव हो सकता है जो चित्रकला का गहरा मर्मज्ञ हो। साथ ही इन बिम्बो में ऊपरी तौर पर एक अर्न्तविरोध सा लगता है जैसे 'केसरिया सांवलापन' अथवा 'कोहरिल बिजलियॉ' किन्तु अधिक सूक्ष्मता से देखने पर यह परस्पर विरोध ही एक अन्तरिक सगति को ओर ईशारा करती है। क्योकि कुहासे और श्यामता के बीच से विद्युतलता कौधती है और फिर उसी मे विलीन भी हो जाती है। इसी प्रकार केसरिया सावलापन भी सौन्दर्य बोध का एक नया आयाम प्रस्तुत करता है।

"यह पूरा
कोमल कासे में ढला
गोलाइयो का आईना
मेरे सीने से कसकर भी
आजाद है
जैसे किसी खुले बाग में
सुबह की सादा
भीनी–भीनी हवा"

('प्रेयसी'. 'काल तुझसे होड़ है मेरी': पृष्ठ– 98)

'काल तुझसे होड़ है मेरी' सग्रह की 'प्रेयसी' शीर्षक कविता मे शमशेर की कल्पना मे सौन्दर्य लोक किस प्रकार रूपायित होता है, इसका एक अनूठा

उदाहरण प्रस्तुत बिम्बो मे झाकता है। बन्धन और मुक्ति का भी एक संश्लेष होता है। कही–कही बन्धन ही मुक्ति का भी एहसास दिलाता है, गोलाइयो को अपने सीने मे कस लेना और उनके भीतर आजादी का एहसास पैदा करना ऐसे ही परस्पर विरोधी अनुभवों का सश्लेष है जिसकी अपनी एक विशेष प्रकार की संगति है।

"चिकनी चादी–सी माटी
वह देह धूप में गीली
लेटी है हॅसती–सी।"

('चिकनी चादी–सी माटी' 'काल तुझसे होड है मेरी' पृष्ठ–103)

शमशेर मूलत. सौन्दर्य के कवि है। यदि उनके पूरे काव्य संसार को किसी एक तत्व से पहचानने का प्रयास किया जाय तो वह तत्व उनका सौन्दर्य बोध ही है। यह सौन्दर्य लोक बाहर से उनके भीतर जाता है और भीतर से रचा जाकर बाहर आता है 'चिकनी चादी–सी माटी' अपनी सुन्दरता और स्निग्धता मे कितनी बेजोड है। यह वही जान सकता है जो कुम्हार के उगुलियो के द्वारा चाक पर गीली माटी से नाना प्रकार की सौन्दर्याकृतियो को निरायाश बनते देखा हो। चक्का धूम रहा है। कीली पर गीली मिट्टी रखी हुई है और कुम्हार की ॲगुली का जादूई स्पर्श कितनी–कितनी छवियों को नाना प्रकार की आकृतियो में निर्मित करता चलता है, ठीक वैसा ही जादुई स्पर्श शमशेर की कल्पना का है। जिसमें कितने–कितने सौन्दर्य लोको का निर्माण होता चलता है।

शमशेर की कविता में अन्तरालों का सर्जनात्मक प्रयोग :–

शमशेर की कविता का स्वभाव सूक्ष्म और साकेतिक है उसमें अन्तरालो का सर्जनात्मक प्रयोग बहुत व्यजक है। यह एक बात को दूसरी से अलग करने भर के लिए नहीं है, अनेक तरह से बोलता हुआ भी है। कई बार यह पाठक को

आत्मान्वेषण का अवसर देता है, कई बार शब्दो की उपस्थिति से उत्पन्न होने वाली भाव सकुलता से बचाता है, कई बार भाव या अनुभूति को विकसित करता है, कई बार भावो को गहरा करता है, कई बार अतीत के प्रंसग को नए तथ्य से जोडता है कुल मिलाकर उनके अन्तराल पाठक की रचनात्मक भागीदारी बढाते हैं और कथन को नए सर्जनात्मक आयाम देते है।

''मोम–सा पीला
बहुत कोमल नभ

एक मधुमक्खी हिलाकर फूल को
बहुत नन्हा फूल
उड गयी

आज बचपन का
उदास मॉ का मुख
याद आता है।''

('धूप कोठरी के आइने मे खडी': 'कुछ और कविताएॅ'–पृष्ठ–117)

'कुछ और कविताएॅ' सग्रह की 'धूप कोठरी के आइने मे खडी है' शीर्षक कविता की पंक्तियॉ कोठरी के आइने मे धूप का उतरना, मोम– सा पीला कोमल नभ आदि मॉ के उदास मुॅह की याद दिलाते हैं। फिर याद आती है बचपन की स्मृति, मॉ का कोमल स्पर्श और उसी उम्र मे उसका जीवन से चले जाना। इसके लिए कवि ने बिम्ब चुना है– 'नन्हे फूल को अपनी छुअन से थरथराता छोड़ मधुमक्खी के उड जाने' का। पहला अन्तराल मॉ के उदास मुख के स्मृति बिम्ब को फ्लैश बैक के क्षणों में बदलने का अवकाश देता है। तथा दूसरा अन्तराल उपस्थित बिम्ब तथा फ्लैश बैक के झटके को एक सम्पूर्ण वेदना

परक स्मृति से जोडने के लिए है। जिसमें वेदना और राग दोनों एकत्र है। स्मृति और स्मृति तंतुओं को अलग तरह से झकृत करने वाली अनुभूति को अन्तराल से कितना व्यजक स्पर्श मिला है। यह यहाँ देख सकते है।

"बा द ल अ क्‍ तू ब र के
ह ल्‍ के र गी न ऊ दे
म द्‌ ध म्‌ म द्‌ ध म्‌ रू क्‌ ते
रू क्‌ ते – से आ जा ते
इ त ने पा स अ प ने।"

('सध्या': 'इतने पास अपने'. पृष्ठ–13)

'इतने पास अपने' सग्रह की पहली ही कविता 'संध्या' सगीत के नोटेशन जैसी लिखी गई है। शब्द के वर्ण पृथक किए गये हैं।– पाठ को धीमे पढने के लिए, ताकि धीरे–धीरे हल्के–हल्के तैरते बादल का धीमापन रूपायित हो सके। इस कविता को पढ़ते हुए पाठक बादल की गति को न केवल महसूस कर सकता है बल्कि उस विलबित संगीत को भी महसूस कर सकता है जो उस समय प्रकृति मे चल रहा होता है। यहाँ कवि ने एक ही शब्द के वर्णों के बीच अन्तराल रचकर उसका अत्यन्त सर्जनात्मक उपयोग किया है। जैसे बलाघात और स्वराघात के द्वारा हम शब्दों के अर्थों मे नयी–नयी व्यजनाएँ पैदा करते हैं, उसी प्रकार शमशेर जी एक शब्द में प्रयुक्त होने वाले अक्षरों के बीच अन्तराल देकर शब्दार्थ की नयी व्यंजनाएँ प्रस्तुत की है।

शमशेर की काव्य–भाषा की चित्रात्मकता :–

कलाकार के व्यक्तित्व के मूल मे कोई एक चीज, कोई कला–रूप होता है, वह उसकी रचनाशीलता के भीतर अर्मूत रूप से सचरित होता है। जैसे अज्ञेय के कर्तृव्य का मूल गद्य है, जैसे प्रसाद के सृजन के भीतर कविता सचारित है, वैसे ही शमशेर की कविता के भीतर उनका चित्रकार बैठा है। कई

बार वह दिखता है, कई बार नही दिखता, लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि वह नही है। मुक्ति बोध का तो कहना यह है कि "शमशेर ने अपने हृदय में आसीन चित्रकार को पदच्युत करके कवि को अधिष्ठित किया है।" शमशेर में ड्राइंग–पेटिग के प्रति विशेष रूझान ही नहीं था, उन्होने ढ़ेरों स्केच, पेंटिग बनाए है। जो हो यह बहुत साफ है कि शमशेर की कविता के चित्रो मे उनका मनस्तत्व अधिक सक्रिय है, जिसके उपयोग से वे कविता मे विलक्षणता पैदा करते है। कई बार शमशेर की कविता चित्रो की अपेक्षा चित्रो की ओर उठी हुई उँगली लगती है।

कविता मे आमतौर पर जो चित्र आते है, वे बिम्बधर्मी होते है और ऐन्द्रिय संवेदनो को जगाते है। इन्ही के सहारे पाठक अतीद्रिय अमूर्त्तन या कविता मे निहित साकेतिकता तक पहुॅचता है। परन्तु शमशेर के चित्र और मूर्ति की उपस्थिति का एक भिन्न अर्थ है। शमशेर के भीतर बिम्ब या अनुभूति काव्यभाषा मे नही चित्र भाषा में अवतरित होती है। उनकी कविता में सम्पूर्ण मूर्ति या चित्र ज्यों के त्यो आ जाते हैं जो सबधित कला–माध्यम द्वारा पहले प्रतीक रूप ले चुके है। यद्यपि शमशेर चित्र को काव्यभाषा मे बदलने की कोशिश करते हैं परन्तु उनकी काव्यभाषा भी अपने मे विरल और किसी हद तक निजी होती है, फिर भी वे जीवनानुभूति, चित्र और कविता के बीच भाषा का ऐसा सेतु बनाते हैं कि थोडा प्रयत्न करने पर न चित्र अव्याख्येय रहते है और न कविता के संवेदन।

"कठिन प्रस्तर में अगिन सूरख
मौन पर्तो मे हिला मै कीट
(ढीठ कितनी रीढ है तन की–तनी है)

आत्मा है भाव

भाव–दीठ

अगम अन्तर मे

अनगिनत सूराख सी करती।"

('कठिन प्रस्तर मे' 'कुछ कविताएँ'.पृष्ठ–39)

'कुछ कविताएँ' संग्रह की 'कठिन प्रस्तर मे' शीर्षक कविता की इन पंक्तियो मे 'अनगिनत सूराखों वाले पत्थर मे हिलता हुआ कीट' एक प्रतीकात्मक शिल्पाकृति है जो अमूर्तन की हैसियत पा चुकी है। अब कवि इसे कविता की भाषा मे रूपातरित करता है। इसका पहला माध्यम है– मैं, और दूसरा है नियत पंक्ति से अलग कोष्ठक में रखी हुई पक्ति। इनके द्वारा शिल्पाकृति का काव्यार्थ खुलने लगता है, आकृति मे निहित मानवीय अर्थ बनने लगते हैं। 'मैं', 'कीट' का रूप ले लेता है या 'कीट', 'मै' का। कवि कहता है 'आत्मा है भाव'–यानी भाव ही आत्मा है, जिसकी दीढ(दृष्टि) झुकी हुई है। तात्पर्य है– आत्मान्वेषणशील दृष्टि। यह दृष्टि अगम्य अन्तर मे उतरती है जो अभी पत्थर की तरह ठोस है। क्योकि अपने सस्कारो और जडताओं मे यह भाव–दृष्टि इसी मन में आवद्ध है, जो अनगितन सूराख करती हुई पतर–दर–परत उसे भेदने की कोशिश करता है। इस बोध के बाद दोनो अंशो के संश्लेष की अर्न्तक्रिया पाठक में प्रारम्भ हो जाती है कि जैसे कोमल सा प्रतीत होने वाला कीट पत्थर में अगणित सुराख करता रहता है। वैसे ही अपनी जड़ता और सीमा के कारण प्रस्तर हो गये मानव मन मे आत्मा की भाव–दृष्टि अनगिनत सूराख करती रहती है।

"सुन्दर

उठाओ

निज वक्ष

और–कस–उभर।

क्यारी

भरी गेंदा की

स्वर्णारक्त

क्यारी भरी गेदा की

तन पर

खिली सारी–

अति सुन्दर! उठाओ।"

('एक मुद्रासे' · 'कुछ और कविताएँ'· पृष्ठ–138)

'कुछ और कविताएँ' सग्रह की 'एक मुद्रा से' शीर्षक कविता की ये पंक्तियॉ मानो एक पोट्रेट बनाने वाले चित्रकार या मूर्तिकार द्वारा अपने माडल से की जाने वाली माग हो। जो पूर्ण और सुगठित सौन्दर्य को केन्वास पर उभारने या पत्थर मे उकेरने की सर्जनात्मक कोशिश कर रहा है। सारा दृश्य सौन्दर्य का एक गहरा साक्षात्कार प्रतीत होता है और कवि की लेखनी से एक शब्द का वाक्य फूट पडता है– 'सुन्दर'। यही सौन्दर्य मूर्तिकार या चित्रकार के सम्मुख पूरे कसाव और उभार मे प्रत्यक्ष होता है, जिससे प्रति कृति में सौन्दर्य अपनी पूर्णता के साथ उतर सके। कलाकार की इस भूमिका के बाद कवि की भूमिका प्रारम्भ होती है। कवि चित्र मे अपने रग भरता है। वह कहता है. 'क्यारी भरी गेंदा की स्वर्णारक्त/ क्यारी भरी गेंदा की : तन पर खिली सारी– अति सुन्दर' ऐसे कथन से वह भराव, रग, श्रृंगार आदि को ऐन्द्रिय बिम्ब श्रृखला में बदलकर एक सम्पूर्ण सयोजन रचता है। इस तरह प्रारम्भिक पक्तियों का औचित्य खुलने लगता है और चित्रकार या शिल्पकार की सर्जनात्मक लेकिन अनासक्त प्रतीति काव्यॉथ मे बदलने लगती है।

"सींग और नाखून

लोहे के बक्तर कन्धो पर।

सीने में सूराख हड्डी का
ऑखो मे· धास काई की नमी।

एक मुर्दा हाथ
पॉव पर टिका
उलटी कलम थामें।

तीन तसलो मे कमर का घाव सड चुका है।

जड़ो का भी कडा जाल
हो चुका पत्थर ।

('सीग और नाखून' 'कुछ और कविताऍ' पृष्ठ–154)

'कुछ और कविताऍ' संग्रह की 'सींग और नाखून' शीर्षक इस कविता के बारे मे स्वय कवि ही रंजना अरगड़े से एक साक्षात्कार के दौरान कहता है–''सीग और नाखून' की बात जब आप कहती है। तब ..असल मे सारी बातें.. .. बाते नही रहती –बातें अनुभ्व मे ट्रान्सफर्माम हो जाती हैं ।. . उन दिनो मेरे ससुर साहब बिमार थे। उन्हे कैंसर था, एच0 वी0 पी0 था. बहुत बिमार थे। मुझे बिमारी देखने का मौका मिला। मैं अस्पताल मे रहता था। प्रोबेवली आई थिंक सो दैट दीज थिंग्स हैव कम फाम देयर..... यह तो मेरा एक्सपीरियंस हुआ फिर मेरी पत्नी विमार रहीं । वही से ये इमेज आये।'' शमशेर यह भी कहते है कि ये सब चित्र में आये। इन भयावह अनुभवों के स्मृति चित्र कवि के मानस में लगातार घुमडते रहे होंगे जो बाद में इस कविता में रूपायित हुए।

शमशेर की काव्य–भाषा की लयात्मकता:–

शमशेर की काव्यलय पर चर्चा करने से पहले काव्यलय के विषय मे आरम्भिक चर्चा करना ज्यादा उचित होगा। काव्यलय के बारे मे दो नितान्त विरोधी मत हैं। एक मत यह है कि लय अनिवार्यत. नियमित आवर्तन है। अर्थात छन्द के साथ इसका निकट का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। साथ ही गद्य–लय की सारी सम्भावना समाप्त हो जाती है। यहॉ तक कि मुक्त छन्द भी इसकी चर्चा से बाहर हो जाता है। दूसरा मत नियमित आर्वतन न होने पर भी रचना मे लय का अस्तित्व स्वीकार करता है। इससे सामान्य बातचीत में वर्तमान लय का भी जायजा लिया जा सकता है। लय कविता के समग्र विश्व को अनुभूति कराने में सहायक सिद्ध होती है। कविता अगर मुक्त छन्द में हो तो लय बहुत ही उप कारक सिद्ध होती है।

''शमशेर की कविताओं में संगीत की एक मन· स्थिति बराबर चलती रहती है, जिसका संगमन बीच–बीच में चित्रकला से बराबर होता है। कविता,सगीत और चित्राकन की एक अद्‌भुत त्रिवेणी शमशेर के यहॉ प्रवाहित है। एक ओर चित्रकला की आकृति उभरती है। और फिर वह सगीत की अमूर्त्तता मे डूब जाती है।यो चित्रकला, संगीत और कविता घुल–मिलकर रचना संभव करते है। भाषा मे बोल चाल के गद्य का लहजा और लय मे संगीत का चरम अमूर्त्तन इन दो परस्पर मन. स्थितियों को उनकी कला साधती है।''

('तार सप्तक से गद्य कविता.' 'डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी': पृष्ठ–33)

शमशेर की अधिकतर रचनाऍ मुक्त छन्द मे हैं। उनकी ऐसी कविताओं में लय की बात बराबर की जाती रही है जो सही भी है। लय विधान की दृष्टि से 'राग' शमशेर की कला को अच्छे ढग से खोलती है। पूरी कविता की लय अत्यन्त प्रशमित है। इसका अन्तिम बंद है–

''तब छन्दों मे तार खिचे–खिचे थे,

राग बंधा–बधा था,

प्यास उँगलियों मे विकल थी–

कि मेघ गरजे

और मोर दूर और कई दिशाओ से

बोलते लगे– पीयूअ! उनकी

हीरे नीलम की गर्दनें बिजलियों की

हरियाली के आगे चमक रही थीं

कहीं छिपा हुआ बहता पानी

बोल रहा था अपने स्पष्ट मधुर

प्रवाहित बोल।"

('राग' 'कुछ कविताएँ' पृष्ठ–20)

'कुछ कविताएँ' संग्रह की 'राग' शीर्षक कविता की इन पक्तियों में बादल,मोर और बहते पानी के बोल मे कवि जैसे अपनी आवाज मिला देता है। यहॉ दृश्य श्रव्य बन जाता है और श्रव्य दृश्य। हीरे–नीलम की विजलियॉ और हरियाली पानी के स्पष्ट मधुर बोल में डूब जाते हैं, और मेघ का गरजना हरियाली में। विभिन्न सवेदन मिलकर रचना की सवेदना मे लय हो जाते है।

"भूलकर जब राह–जब राह .... भटका मै

तुम्ही झलकों, हे महाकवि

सघन तम की ऑख बन मेरे लिए,

अकल क्रोधित प्रकृति का विश्वास बन मेरे लिए–

जगत के उन्माद का

परिचय लिए–

और आगत–प्राण का संचय लिए, झलके प्रमन तुम,

हे महाकवि! सहजतम लघु एक जीवन मे

अखिल का परिणय लिए–

प्राणमय संचार करते शक्ति औ छवि के मिलन का ह्रास मगलमय,

मधुर आठो याम

विसुध खुलते

कंठ स्वर में तुम्हारे कवि

एक ऋतुओ के विहँसते सूर्य।

काल मे (तम घोर)–

बरसाते प्रवाहित रस अथोर अथाह।

छू किया करते

आधुनिकतम दाह मानव का

साधना स्वर मे

शात शीतलम।''

('निराला के प्रति': 'कुछ कविताएँ': पृष्ठ–15)

'कुछ कविताएँ' सग्रह में सकलित 'निराला के प्रति' शीर्षक कविता, मुक्त छन्द और अतुकान्त होते हुए भी, मे लय का सम्पूर्ण निर्वाह हुआ है। यह स्वाभाविक ही है कि 'निराला के प्रति' शीर्षक इस कविता मे कवि की चेतना में वही लय प्रवाह प्रवहमान है जो स्वय निराला की छन्द मुक्त कविताओ मे हमे देखने को मिलता है 'जूही की कली', 'विधवा', अथवा 'वह तोडती पत्थर' जैसी कविताओं में निराला इसी लय के बल पर ही पाठकों के मानस में कितनी सघनता से उतरते जाते है। ऐसा इसी लिए सम्भव हो सका है कि शमशेर बहादूर सिंह भी मूत्तर्त नाद सौन्दर्य के कवि है। असल में हिन्दी काव्य की वास्तविक शक्ति यह नाद सौन्दर्य ही है।

''य' शाम है

कि आसमान खेत हैं पके हुए अनाज का।

लपक उठी लहू भरी दरातियाँ

कि आग है·

धुआँ–धुआँ

सुलग रहा

गवालियर के मजूर का हृदय।''

('य' शाम है'· 'कुछ कविताएँ' पृष्ठ–40)

'कुछ कविताएँ' सग्रह मे सकलित 'य' शाम है' शीर्षक कविता की इन पक्तियों मे लय– विधान का सम्पूर्ण निर्वाह हुआ है। जबकि यह कविता अतुकान्त और मुक्त छन्द मे लिखी गई है। कविता की पहली ही पंक्ति 'य' शाम है' जितनी बार गुनगुनायी जाय उतनी ही पाठक की चेतना मे निनादित होती चली जाती है। ऐसा लगता है कि कवि इस कविता को बार–बार गुनगुनाता है और उसकी गूज और अनुगूज स्वय कवि के मन में बहुत गहरे उतरती चली गयी है।

''मौन आहो मे बुझी तलवार

तैरती है बादलो के पार।

चूमकर उषाभ आशा अधर

गले लगते हैं किसी के प्राण।

–गह न पायेगा तुम्हे मध्याह्नः

छोड़ दो ना ज्योति का परिधान।''

('मौन आहो में बुझी तलवार'ः 'कुछ कविताएँ'ः पृष्ठ–34)

'कुछ कविताएँ' संग्रह मे संकलित 'मौन आहों मे बुझी तलवार' शीर्षक कविता ध्वनि साम्य का एक सुन्दर उदाहरण है। यहाँ पहली तीन पक्तियों का अन्त 'र' और अन्तिम दो पक्तियो का अन्त 'न' वर्ण पर हुआ है। जिसके कारण इस कविता मे लय विधान का निर्वाह हुआ है।

''यह विवशता

कभी बनती चॉद

कभी काला ताड

कभी खूनी सडक

कभी बनती भीत, बाध

कभी बिजली की कडक जो

क्षण–प्रतिक्षण चूमती–सी पहाड।''

('यह विवशता'· 'कुछ कविताऍ' पृष्ठ–59)

'कुछ कविताऍ' सग्रह मे सकलित 'यह विवशता' शीर्षक कविता की इन पक्तियों मे 'कभी' का बार–बार आवर्त्तन इस कविता को सहज ही लयात्मक बना देता है। कवि मनुष्य के अन्तर में व्याप्त उस आन्तरिक प्रेरणा द्वारा परिचालित है । यहॉ कविता की लय मन के ज्वार से परस्पर वलयित हो रही है। प्रकम्पित करने वाला वह ज्वार किस प्रकार काव्य–भाषा के लय में सक्रमित होता है, इसका अद्भूत उदाहरण यह कविता सम्प्रेषित करती है।

''शाम का बहता हुआ दरिया कहॉ ठहरा।

सावली पलकें नशीली नीद मे जैसे झुके

चांदनी से भरी भारी बदलियॉ है,

खाब में गीत पेग लेते हैं

प्रेम की गुइयॉ झुलाती है उन्हें:

–उस तरह का गीत, वैसी नीद,वैसी शाम–सा है

वह सलोना जिस्म।''

('वह सलोना जिस्म': 'कुछ कविताऍ': पृष्ठ–64)

इस प्रकार शमशरे की काव्य मजूषा से ऐसी अनेक कविताओ को प्रस्तुत किया जा सकता है जिसकी सम्पूर्ण व्यजना उसके लय में से ही फूटी। कुछ ही उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

''एक पीली शाम
पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
शात
मेरी भावनाओ मे तुम्हारा मुख कमल
कृश म्लान हारा–सा
(कि मै हूँ वह, मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं)
वासना डूबी
शिथिल पल मे
स्नेह काजल मे
लिए अद्‌भूत रूप–कोमलता
अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ ऑसू
सान्ध्य तारक–सा
अतल में ।''

('एक पीलीशाम'· 'कुछ कविताऍ': पृष्ठ–29)

यह पीली शाम शमशेर की 'य' शाम हैं से अलग एक दूसरे ही प्रकार की गद्य–लय प्रस्तुत करती है जिसमे वह प्रवाह नहीं जिसे हमने 'य' 'शाम है' मे देखा था किन्तु इसकी परणिति लय की एक विचित्र किस्म की है जो अन्तिम पक्तियों मे उसी प्रकार प्रतिध्वनित होती है जैसे कोई संगीतज्ञ अपनी अन्तिम परिणति मे सहसा थम जाता है–''अब गिरा............/अतल में।'' लय की यह परिणति संगीत का एक प्रतिगूंज सी प्रतीत होती है।

''एक नीला आइना

बेठोस–सी यह चॉदनी

और अन्दर चल रहा हूँ मैं

उसी के महातल के मौन में।

मौन मे इतिहास का

कन किरन जीवित, एक बस।

एक पल के ओटे मे है कुल जहान।"

('एक नीला आइना बेठोस': 'कुछ कविताएँ'· पृष्ठ–21)

'कुछ कविताएँ' संग्रह की 'एक नीला आइना बेठोस' शीर्षक कविता की इन पक्तियो में अर्थ और लय का इतना गहरा सश्लेष है जो स्वयं शमशेर के यहॉ भी बिरल है।

शमशेर की कविता मे गद्य की लय का अर्थात् कुछ गद्य–सरचनाओं का काव्यात्मक उपयोग पूरे कौशल के साथ हुआ है–

"हॉ, तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियॉ लहरो से करती हैं

. जिन मे वह फसॅने नहीं आती

जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं

जिसको वह गहराई तक दबा नही पाती

तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मै तुम से करता हूँ

('टूटी हुई विखरी हुई': 'कुछ और कविताएँ'· पृष्ठ–133)

'तुम' को सम्बोधित यह नाट्य एकालाप गद्यवत है। प्रेमी वक्ता अपने प्रेमास्पद के सामने प्रेम का आदर्श प्रस्तुत कर रहा है। 'जल बीच मीन' और 'सीने में हवा' के बिम्ब इस प्रकथन को काव्य परम्परा से जोड़ते है। 'आती–पाती' की तुक तथा सरचना और व्यजना का असारधारण संगुम्फन इन गद्यवत वाक्यों को ऊर्जस्वित कविता बना देता है।

शमशेर के काव्य–भाषा की नज़ाकत :–

शमशेर उर्दू काव्य भाषा का सस्कार लेकर हिन्दी कविता में आये थे। उर्दू काव्य भाषा में मुहावरे और वाक्य विन्यास पर खास जोर दिया जाता है। अज्ञेय जी ने अपनी 'शाश्वती' मे उर्दू और हिन्दी इन दो भाषा स्वभावों की चर्चा के दौरान 'शमशेर की बात की है वे मानते है कि– "शमशेर मूलतः उर्दू के कवि हैं और रहे हैं, उनकी सवेदना का सस्कार उर्दू का रहा है।" शमशेर ने भाषा की नज़ाकत का जो रूप अपनी कविताओ मे उकेरा है, वह उर्दू और हिन्दी दोनों का मिला–जूला समन्वित रूप है। वह सर्वथा उनका अपना, उनका निजी है। उर्दू और हिन्दी शब्द इतनी सहजता से उनकी कविताओं में एक साथ आते हैं कि कविता की रचना प्रकिया में शमशेर के यहॉ यह भेद रह ही नहीं जाता कि यह उर्दू का शब्द है या हिन्दी का। कुछ भी सयास नही है। काव्य भाषा में शमशेर ने हिन्दी और उर्दू के बीच सेतु का काम किया है। हिन्दी को उर्दू की मिठास, तरास और लोच देने का श्रेय शमशेर को ही जाता है। यही काम प्रेमचन्द ने हिन्दी गद्य क्षेत्र मे किया। नीचे उदाहरण स्वरूप कुछ कविताओ के अंश दिये जा रहे है, जिनसे इस मान्यता की सच्चाई को समझा जा सकता है–

"बेखबर मैं,
बाखबर आधी–स्री रात
बेखबर सपने है।
बाख़बर है एक, बस, उसकी जात!
तू मेरी!...
आमीन !
आमीन!
आमीन!"

('रेडियो पर एक योरपीय संगीत सुनकर': 'कुछ कविताएँ': पृष्ठ–26)

अथवा

"क्यों यह धुकधुकी, डर–
दर्द की गर्दिश यंकायक सास तूफान मे गोया।
छिपी हुई हाय–हाय मे
सुकून
की तलाश।
बर्फ के गालों मे है खोया हुआ
या ठंडे पसीने मे खामोश है
शबाब।"

('आओ!': 'कुछ कविताएँ': पृष्ठ–66)

अथवा

"गुलशन से जो इतराती आगन मे बहार आयी
खुश जौक दुल्हन उसकी शोखी को सॅवार आयी।"

"यह कौन निगार आया, फिर बॉगे–हजार आयी
कलियो ये निखार आया, फलों पे बहार आयी।"

('कुछ शेर'· 'कुछ और कविताऍं'· पृष्ठ–107)

अथवा

"कबूतरो ने एक गज़ल गुनगुनायी
मैं समझ न सका रदीफ काफ़िये क्या थे
इतना खफीफ इतना, इतना हल्का, इतना मीठा
उनका दर्द था"

अथवा

"सिर्फ एक बहुत

काली बहुत लम्बी जुल्फ थी जो जमींन तक

साया किये हुए थी''

उपर्युक्त काव्याशो में बेखबर, बाखबर, आमीन, गर्दिश, सुकून, तलाश, खामोश, शबाब, गुलशन, बहार, खुशजौक शोखी, गजल, रदीफ काफिये, खफीफ़ जैसे शब्द शमशेर की काव्य भाषा को जो प्रवाह और गति देते है वह शुद्ध हिन्दी में लिखने वालों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है। वास्तव मे उनकी कविताओ मे उर्दू और हिन्दी के अलग–अलग शब्द ढूढने की कोई विशेष सार्थकता भी महसूस नहीं होती । वे इतनी सहजता से कविताओं में आते हैं कि कभी अजनबी लगते ही नही। हिन्दी भाषी समाज में यह बहस बहुत लम्बे समय से चलती रही है कि भाषा विशेषकर सर्जनात्मक भाषा का रचाव कैसा हो, क्या वह विशुद्ध तत्सम संस्कृतिष्ठ शब्दावली द्वारा निर्मित होनी चाहिए जैसा कि हम जयशकर प्रसाद की काव्य–भाषा या निराला की 'राम की शक्ति पूजा' जैसी कविताओ की भाषा मे देखते है या कि उसके निर्मिति में अत्यन्त सहजता से हिन्दी उर्दू का एक रसायन होना चाहिए जैसा कि धर्मवीर भारती या फिर रघुवीर सहाय या शमशेर की भाषा में हम देखते है। गद्य के सन्दर्भ में इसका उत्तर प्रेमचन्द ने दिया है। और काव्य के सन्दर्भ मे धर्मवीर भारती और शमशेर बहादुर सिह ने। सच बात यह है कि काव्य भाषा की क्षमता इस बात पर निर्भर नही करती कि शब्दों का स्रोत क्या है। समाज–जीवन मे जो शब्दावली रवॉ है उसे अपनाकर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रचनाएँ लिखी जा सकती हैं। वशर्ते वे जीवनानुभव से अनुप्रमाणित हो और पाठक मे सच्ची अनुभूति का संचार करती हों। शमशेर इस कसौटी पर बहुत खरे उतरते हैं। परन्तु शमशेर की काव्य–भाषा के रचाव को केवल इस बात के मद्देनजर रखकर नही समझा जा सकता है कि शब्दो का स्रोत क्या है? शमशेर के शब्द–विन्यास मे जो एक कलात्मकता है उसे ग्रहण कर पाना हर पाठक के बूते की बात नहीं है।

अध्याय-5
भवानी प्रसाद मिश्र:
जिस तरह हम बोलते हैं,
उस तरह तू लिख

'दूसरा सप्तक' की कवियो मे भवानी प्रसाद मिश्र अपनी भाषिक ऋजुता के कारण सभी से अलग हैं। एक विशेष प्रकार की ऋजुता भाषा के धरातल पर रघुवीर सहाय में भी देखने को मिलती है। परन्तु रघुवीर सहाय मूलत एक आधुनिक सरल और नागर भाषा के आविष्कर्ता है और चूंकि उनकी भाषा की खोज मुख्य रूप से दिल्ली के समाचार पत्रों मे काम करते हुए निष्पन्न हुई है, इसलिए उस भाषा की शब्दावली पत्रकारिता की और समाचार जगत से पूरी गहराई से जुडी हुई शब्दवली है। परन्तु भवानी प्रसाद मिश्र का भाषा संसार हमारे रहने–सहने की सामान्य जिन्दगी से जुडा हुआ है, प्रकृति से जुडा हुआ है। इसलिए उनके शब्दो की खोज किसी विशेष कोने मे हमें नही ले जाती। पूरी प्रकृति और हमारा सम्पूर्ण व्यवहार जगत उनकी भाषा परिधि में आता है। परन्तु उनकी उपलब्धि इस बात में है कि उन्हे पढते हुए हमें बार–बार लगता है कि वे हमसे बतिया रहे है। बात़–चीत को इस प्रकार की सर्जनात्मक रेखाओ में बांधना और एक नये प्रकार की ऋजु शब्दावली और नये भाषा विन्यास की निर्मिति पाठक की पूरी तौर पर सहलाते और सवेदित करते हुए उसके भीतर एक नये प्रकार का सर्जनात्मक उन्मेष पैदा करना भवानी प्रसाद की काव्य–भाषा का एक खास चमत्मकार है। कवि भवानी जब लेखन के क्षेत्र मे आये उस समय न केवल लिखने और बोलने की भाषा अलग–अलग थी बल्कि लिखने और लिखने की भाषा ही अलग थी। एक वह भाषा थी जिसे हम कोरी साहित्यिक कह सकते है और दूसरी वह जो लोक जीवन से जुड़ी हुई थी। जिसका व्याकरण किताबों में बन्द न था बल्कि जनता द्वारा अनुशासित और नियंत्रित था। मिश्र जी ने अपनी कविता के लिए भाषा के इसी रूप को चुना। एक जगह उन्होने स्वय कहा है– "मै जो लिखता हूँ उसे जब बोलकर देखता हूँ और बोली उसमें बजती नही है तो मैं पक्तियों को हिलाता–डुलाता हूँ। बोलचाल

हिन्दी की मेरी ताकत है।" इसीलिए भवानी प्रसाद मिश्र की कविता भाषा उतनी नहीं है जितनी की वह 'बोली' है।

अपने ऊपर पडे अन्य कवियो के प्रभावो और अपनी कविता की भाषा के सम्बन्ध में उन्होने लिखा है– " मुझ पर किन–किन कवियों का प्रभाव पडा है, यह भी एक प्रश्न है। किसी का नही। पुराने कवि मैंनें कम पढे, मुझे जॅचे नहीं। मैंने जब लिखना शुरू किया तब अगर श्री मैथलीशरण गुप्त और श्री शियाराम शरण को छोड़ दे तो छायावादी कवियो की धूम थी। 'निराला', 'प्रसाद' और 'पन्त' फैशन में थे। मेरी कम्बख्ती (जिसे कहने मे भी डर लगता है)– ये तीनो ही बडे कवि मुझे लकीरो मे अच्छे लगते थे। किसी एक की भी एक पूरी कविता बहुत नही भा गयी। तो उनका क्या प्रभाव पडता। ॲगरेजी कवियों में मैने वर्डसवर्थ पढा था और ब्राउनिग–विस्तार से। बहुत अच्छे मुझे लगते थे दोनों। वर्डस्वर्थ की एक बात मुझे पटी कि 'कविता की भाषा यथा सम्भव बोलचाल के करीब हो तत्कालीन हिन्दी कविता इस खयाल से बिल्कुल दूसरे सिरे पर थी। तो मैने जाने–अनजाने कविता की भाषा सहज रखी। प्रायः प्रारम्भ की एक रचना में ('कवि से') मैंने बहुत–सी बातें की थी· दो लकीरे याद हैं:

जिस तरह हम बोलते है उस तरह तू लिख,
और उसके बाद भी हमसे बडा तू दिख।"

('वक्तव्यः' 'दूसरा सप्तक': सं0 अज्ञेय· पृष्ठ–20)

आज इतने दिनो बाद भी इन पक्तियों के भीतर से ध्वनित होने वाला सत्य जरा भी धूमिल नहीं हुआ और न ही मलिन। डॉ0 राम कमल राय ने अपने एक लेख मे लिखा है– " जिस बात को अज्ञेय काफी गहरे विश्लेषण, तर्क एवं युक्ति के सहारे 'दूसरा सप्तक' की भूमिका मे समझाते हैं, वही सत्य इतने सहज रूप में इन दो पंक्तियों में कौध जाता है। 'कविता क्या है?' इस प्रश्न का उत्तर युगों से मनीषी देते आये हैं। आचार्य रामाचन्द्र शुक्ल का पूरा लेख इस

गुत्थी के विभिन्न पक्षो को सुलझाने का प्रयास करता है। परन्तु भवानी भाई ने जो बात कह ही वह अपने आप मे लाजबाब है।"

(नई कविता· नई दृष्टि डॉ0 राम कमलराय· पृष्ठ–137)

भवानी प्रसाद मिश्र सुराजी थे। सुराजी भवानी भाई और कवि भवानी मिश्र में शुरू से ही एका रही है। सच तो यह है कि प्रभात फेरियों जेलों और जनान्दोलनो के बीच कविता उनकी सहधर्मिणी परिणीता की तरह उनके साथ होती थी। चाहे भवानी भाई आजादी की लडाई लड रहे हो या आजाद हिन्दुस्तान मे रह रहे हों, कविता सदैव उनके साथ होती। नौकरी, शादी, बिमारी और मौत के तमाम मोंर्चों पर वह उनके साथ खटती, गाती, बेचैन होती और जूझती हुई जिन्दगी जितने रगो मे डूबी है, जितने कीचड मे सनी है, जितने बोझ से लदी–फदी है, उनकी कविता भी उतनी ही डूबी, सनी और लदी–फंदी है। सहज और स्वभाव सिद्ध होने के कारण ही वह हर क्षण बजती है। पढ़ने में जितना वह खुलती है, उससे कही अधिक सुनने और गुनने में।

गांधी विचार धारा से सम्पृक्त होकर जीवन को देखने वाले भवानी प्रसाद मिश्र की जीवन के भौतिक मूल्यों के प्रति विद्रोही दृष्टि रही है। मानववाद के प्रति उन्मुख होते हुए गाधी जी की तरह साम्य वादी विचार और पूरे समाज को धर्म, जाति, ऊॅच–नीच, वर्ग, वर्ण–भेद से ऊपर उठाने की प्रवृत्ति का प्रभाव कवि मन पर पडा है। कवि पूरे देश को छूआ–छूत, काले गोरे, हिन्दू–मुसलमान के भेद–भाव से ऊॅचा उठाना चाहता है। भवानी भाई की कविता समूचे मनुष्य को लेकर चलती है। वह जो भविष्य मे जितना है, उससे कहीं अधिक अतीत में है। और इस अतीत को सक्रिय किये बिना भविष्य घट ही नहीं सकता। अतीत गर्भ केन्द्र है। भविष्य उसका शिशु है। भवानी भाई जब 'भूत जगाने' की बात करते हैं तब वे उसी मानव इतिहास की ओर इशारा कर रहे होते हैं।

गाधी और गांधी दर्शन के प्रति भवानी भाई का लगाव तब से था जबसे उन्होने उपने आस–पास के परिवेश को जानने और समझने की कोशिश शुरू की थी। गांधीवाद उनके लिए सिर्फ एक वैचारिक प्रेरणा का स्रोत भर नही रह गया था, बल्कि उनकी चेतना और सवेदना तत्र का एक अभिन्न हिस्सा बन गया था। नि:सकोच कहा जा सकता है कि वे कविता के गाधी थे। चाहे अग्रेजी हो अथवा हिन्दी, गांधी जी ने इन दोनो भाषाओ का एक अत्यन्त ऋजु स्वरूप विकसित किया था। गांधी कवि तो नही थे लेकिन गाधी जी की पत्रकारिता का दायरा बहुत विस्तृत था और उसका अभ्यास बहुत ही लम्बा। वे जीवन भर पत्रकारिता के क्षेत्र से जुडे रहे। और चाहे 'यग इण्डिया' हो या 'हरिजन' वे बराबर एक ऋजु भाषा के विकास की दिशा मे असाधारण उपलब्धियो के स्वामी रहे। गांधी जैसी सरल भाषा लिखने वाले हिन्दी मे विरले ही हुए हैं। ग़द्य के क्षेत्र में जैनेन्द्र कुमार और बिनोवा भावे तथा काव्य के क्षेत्र में भवानी प्रसाद मिश्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे ज़ा सकते हैं। भवानी भाई की कविताओ मे जिस प्रकार की भाषा प्रयोग मे आयी है, वह एक प्रकार की भाषिक–सिद्धि का उदाहरण है। 'दूसरा सप्तक' में सकलित अपनी कविताओं के सम्बन्ध मे उन्होने स्वयं कहा है– ''दूसरा सप्तक' की मेरी कविताएँ मेरी ठीक प्रतिनिधि कविताएँ नही है। जगह की तगी सोचकर मैंने छोटी–छोटी कविताएँ ही इसमें दी है।..... .... बहुत मामूली रोजमर्रा के सुखःदुख मैंने इनमे कहे हैं, जिन का एक शब्द भी किसी को समझाना नही पडता।

''शब्द टप–टप टपकते है फूल से; सही हो जाते हैं मेरी भूल से''।

('वक्तव्य'–'दूसरा सप्तक'– पृष्ठ–21)

गीत फरोश (1956) कवि मिश्र का पहला काव्य संग्रह है। इसमें कवि ने अपने गीतो के माध्यम से तत्कालीन भ्रष्ट भारतीय मन के खिलाफ आवाज उठायी है। 'किसिम–किसिम' के गीतों द्वारा कवि नें सामाजिक वैषम्य, भ्रष्टाचार,

रिश्वत खोरी के प्रति व्यंग्य किया है। प्रकृति सौन्दर्य, क्रान्ति का उद्घोष और मानवतावादी चेतना का स्वर इस संग्रह की कविताओं मे जगह–जगह दिखाई पडता है। कवि ने पूरी ईमानदारी के साथ इस संग्रह की कविताओ मे अपनी अभिव्यक्ति को वाणी दी है। मनुष्य के अमानवीय व्यवहार व विवशता के प्रति करारा व्यंग्य करते हुए कवि लिखता है–

"जी हॉ हुजूर, मै गीत बेचता हूॅ।
मै तरह–तरह के
गीत बेचता हूॅ,
मै सभी किसिम के गीत
बेंचता हूँ ।

जी, माल देखिए दाम बताऊॅगा,
बेकाम नही काम बताऊॅगा
x x x
जी, आप न हो सुनकर ज्यादा हैरान ।
मै सोच–समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूॅ,
जी हॉ हुजूर मै गीत बेचता हूॅ।"

('गीत–फरोश': 'दूसरा सप्तक': पृष्ठ–36–37)

'दूसरा सप्तक' में संकलित 'गीत फरोश' शीर्षक कविता में कवि ने अपनी कसक और पीड़ा को इन्द्रधनुषी रंगो मे रचा है । पूरी की पूरी कविता एक बाजारू परिवेश को प्रस्तुत करती है । इसकी भाषिक सरचना और इसमें व्यंजित अनुभव में इतना गहरा तादात्म्य है कि पाठक को लगता ही नही वह कोई कविता पढ रहा है, बल्कि वह अपने को किसी बाजार में खड़ा पाता है ।

जहाँ व्यापारी अपने 'किसिम–किसिम' के माल बेच रहे है । मोल–तोल का एक पूरा परिवेश उपस्थित हो जाता है ।

कवि का दूसरा काव्य सग्रह 'चकित है दुख' (1968) स्वातंत्र्योत्तर काल मे देश की पतित स्थिति का चित्राकन है । जीवन आदर्शों मे हो रहे ह्रासमूलक परिवर्तनों के प्रति निराशा से ग्रस्त होकर देश की छिन्न–भिन्न होती हुई स्थिति से कवि मन पीडित होता है । फिर भी आशा और आस्था तथा विश्वास के स्वर की गूंज इस सग्रह की कविताओं में परिलक्षित होती है । कुछ कविताओ में समाजिकता का भाव, यथार्थ बोध, जीवन बोध, मानवीय सवेदना, पारिवारिक प्रेम, विषमता के चित्र और मृत्यु का एहसास भी मुखरित हुआ है । कवि मानव की पीड़ा से ग्रस्त है । जीवन के क्रूर सत्य और यथार्थ पक्ष को उभारते हुए कवि सामाजिक आडम्बर और स्वार्थी प्रवृत्तियो से घिरे हुए देश की अराजकता तथा भ्रष्टाचारी स्थिति से घबरा उठता है । यहाँ कवि को सत्ताधारी वर्ग गाधीवादी विचार धारा का गला दबोचनें मे सलग्न दिखाई देता है ।

कवि के अगले काव्य संग्रह 'अँधेरी कविताएँ' (1968) में आत्म चिन्तन, रोजमर्रा का दुःखी चहरा, जीवन मूल्य, युग सत्य, मानवतावादी चेतना से सम्बद्ध और जनमानस के प्रति समर्पण के भाव से युक्त कविताएँ है । उस समय पूँजीवादी और सामतवादी शक्तियाँ मानव को विनाश के गर्त मे ढकेल रही थी । देश की राजनीति मानव को छल रही थी । मनुष्य चुपचाप तत्कालीन स्थितियों का द्रष्टा मात्र बनकर रह गया था । कवि ने युग सत्य को अपनी अनुभूतियों से पहचाना । 'सतपुडा के घने जंगलों' के तूफान कवि को निर्भय होकर आशा आस्था और विश्वास की ओर उन्मुख करते हैं ।

कवि का चौथा काव्य संग्रह 'गांधी पंचशती' (1970) गांधी दर्शन को मूर्त रूप देने वाला संग्रह है, जिनमें कवि की कुल पांच सौ कविताएँ सग्रहीत है । कवि विस्मृत होती हुई गाधी जी की वाणी को जनमानस को सुनाकर यह संदेश

देना चाहता है कि संकट के समय गाधी की वाणी ही मानवता की रक्षा कर सकती है । मिश्र जी मानवतावादी कवि है । परस्पर प्रेम, करूणा, सहृदयता ही लोक कल्याणकारी हैं। इस सग्रह की कविताओ मे गांधी दर्शन की व्यवहारिकता, पीडितों के प्रति सवेदना का भाव, प्रगतिशील दृष्टि, समन्वयवादी जीवन पद्धति, शान्ति का स्वर, कर्म शक्ति पर विश्वास, निष्ठा, आशा व दृढ संकल्प शक्ति को प्रोत्साहन, राष्ट्रभाषा की अनिवार्यता आदि प्रवृत्तियों पर विशेष बल दिया गया है । गाधी जी के माध्यम से मिश्र जी कहते हैं –

"सृष्टि में तुम आदमी तो आदमी
हर जीव पत्ती, पेड तक की आत्मा का ध्यान रखते हो
दस दिशा मे सदा जागृत भावनाएँ कर्मरत प्राण रखते हो।"

('तमिस्रा की ताडका'–'गांधी पचशती'–पृष्ठ–15)

कवि ने अपने अगले काव्य संग्रह 'बुनी हुई रस्सी' (1971) की कविताओं मे रचना प्रकिया और काव्य सिद्धान्त सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये हैं । इस संकलन की कुछ कविताएँ आत्म चितन परक, आशा, निश्चय और साहस की कविताएँ है और कुछ में जन जीवन उभर कर आया है । कुछ कविताएँ एकाकीपन और असामर्थ्य का बोध देती हैं । कही कवि ने मृत्यु का साक्षात्कार करते हुए मानव के आन्तरिक विकास पर बल दिया है । तो कही जीवन व त्रासदी के चित्र है । कवि ने अपने संघर्ष द्वारा जीवन की सार्थकता को पहचाना है । प्रकृति चित्रण के भव्य रूप, जीवन दर्शन की अनुभूति और श्रम का उल्लास कवि की वाणी द्वारा अभिव्यक्त हुए हैं । कवि के मन में राष्ट्रभाषा को सर्वशक्तिशाली बनाने की आकांक्षा है । कवि ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है – "मैने जिस भाषा को दुलारा था उसे इस सग्रह के माध्यम से मुकुट पहना रहा हूँ।"

('बुनी हुई रस्सी'–पृष्ठ–12)

'बुनी हुई रस्सी' को उलटा करके घुमाने से उसके रेशे–रेशे अलग–अलग हो जाते है, वह विखर जाती है लेकिन कवि ने जीवन के विखरे हुए अनुभव रूपी रेशों को समेटकर कविता का निर्माण किया है –

"लिखने वाला तो
हर विखरे अनुभव के रेशे को
समेटकर लिखता है ।"

('बुनी हुई रस्सी'–पृष्ठ–17)

कवि के अगले काव्य संग्रह 'खुशबू के शिलालेख' (1973) में प्रेमभाव से युक्त अपनत्व की खुशबू है । इसमे जहॉ एक ओर प्रकृति के सजीव चित्र उभरकर आये है वही दूसरी ओर महानगरो के मशीनीकरण और विखरते हुए जीवन पर प्रकाश डाला गया है । कहीं जीवन के उल्लास और उत्साह को वाणी मिली है तो कही उदासी और शिथिलता को । वैचारिकता और भावना के अद्‌भुत समन्वय से युक्त शब्द की महत्ता को व्यंजित करने वाली कविताऍ भी हैं । इस संग्रह की कुछ कविताओ में करूणा, उदारता व सहानुभूति का स्वर ध्वनित होता है –

"चलना है रास्ता
बचाकर चींटी–चीटी तक को
समझना है दूसरो के मन की पीडा
सुलग रही ज्वाला दूसरों के प्राणो की ।"

('खुशबू के शिलालेख'–पृष्ठ–98)

कवि अपने सातवें काव्य सग्रह 'व्यक्तिगत' (1974) में नई रचनाओं का धरातल खोजता हुआ दिखाई देता है । यहॉ कविता में जिन्दगी और जिन्दगी में कविता की खोज है । सामान्य जन से जुडी यथार्थ स्थिति, मानव जीवन के प्रति अदम्य आकांक्षा, आस्था, निष्ठा, आशा के स्वरों के साथ ही नीति प्रधान

कविताएँ और परिवारिक चित्र भी इसमे दिखाई देते है । काव्य सिद्धान्त सम्बन्धी तथा प्रकृति परक कविताओ में मानव और प्रकृति का अन्तरग समन्वय दृष्टिगोचर होता है । नैतिक चिन्ता मे विमग्न कवि का मन छटपटाता है । कवि की मान्यता है –

"कला वह है
जो सत्य के अनुरूप हो
और जीवन को
उठाने वाली हो।"

('व्यक्तिगत'–पृष्ठ–20)

कवि के आठवे काव्य–संग्रह 'परिवर्तन जिये' (1976) की कविताएँ प्रगतिवादी और युद्धो की भयावहता से उत्पन्न स्थिति के प्रति व्यंग्य करती हुई समाज मे बढती यान्त्रिकता और भौतिक जीवन मे औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप उद्भूत होने वाली खिन्नता को उजागर करती हैं । आशा, आस्था, विश्वास और श्रम का भाव यहाँ भी है । हिंसा के वातावरण मे कवि को समय और परिवेश मे परिवर्तन की आशा दिखाई देती है । बीसवी शताब्दी में पानी की तरह बहते हुए खून को देखकर कवि विचलित हो गया है । गांधीवादी विचारो की हत्या करने वाले व्यक्तियों पर कवि ने तीव्र प्रहार किया है ।

कवि के अगले काव्य–सग्रह 'अनाम तुम आते हो' (1976) में अध्यात्म और अलौकिक शक्ति सम्बन्धी वैयक्तिक जीवन से सम्बद्ध स्मृति परक, ठोस सत्य का साक्षात्कार करने वाली आशा, आस्था और विश्वास की कविताओं के साथ ही युद्ध सम्बन्धी एव प्रकृति चित्रण से युक्त कविताएँ है । कवि देश की पतित स्थिति के प्रति जागरूक होकर पतन के गर्त में गिरी हुई स्थिति के प्रति करारा व्यंग्य करता है । भारतीय संस्कृति के प्रति मानव मात्र का उदासीन भाव देखकर कवि विद्रोह करता है । आदर्शोन्मुखी प्रवृत्तियों के विस्तार के साथ ही

आध्यात्मिकता का भाव इन कविताओ मे है । इनमें वास्तविक जीवन की अनुभूति का चित्रण भी है ।

कवि का दसवाँ काव्य–संग्रह 'इद न मम' (1977) उसकी परिपक्व विचारधारा की अभिव्यक्ति है । जीवन की पीडा से जूझता हुआ कवि प्रेरणा, साहस और चुनौती की कविताएँ लिखता है। ईश्वर मे कवि का विश्वास दृढ होने लगता है । अदृश्य शक्ति के आभास से प्रभावित कवि ईश्वर से मानवमात्र के लिए प्रार्थना करता है । कवि चारो ओर के निराशामय अंधकार से त्रस्त होकर भी अन्तर्मन मे प्रकाश की किरण जागृत किये हुए है । इस संग्रह की कुछ कविताएँ मृत्यु से मुकाबला करने वाली, काव्य–विषयक, प्रकृति परक एव ध्वनि की महत्ता का प्रतिपादन करने वाली है ।

'त्रिकाल सध्या' कवि का अगला काव्य सग्रह है । इसमें देश की आपात कालीन स्थिति की युग सत्य के रूप मे अभिव्यक्ति है । आपात स्थिति को कवि ने मरण त्यौहार के रूप में स्वीकारा है । जनता पर होने वाले अत्याचारों के फलस्वरूप कवि ने युग सत्य को वाणी दी है । 'चार कौए उर्फ चार हौये' शीर्षक कविता में प्रमुख सत्ताधारियो पर व्यंग्य है –

"कभी–कभी जादू हो जाता है दुनिया मे
दुनिया भर के दुःख दिखते औगुनियो मे
ये औगुनिएँ चार बड़े सरताज हो गये
इनके नौकर चील, गरूड और बाज हो गये ।"

('चार कौए उर्फ चार हौए'–'त्रिकाल सन्ध्या'– पृ0–)

बारहवे काव्य–संग्रह 'कालजयी' (1980) में मानव–मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए कवि ने सम्राट अशोक के जीवन सिद्धान्तों को आधुनिक युग के सन्दर्भ में एक आदर्श के रूप मे प्रस्तुत किया है । युद्ध की परिणति से संत्रस्त अशोक ने मानव कल्याण के लिए स्वयं को समर्पित किया । मानवीय प्रेम,

करूणा व सहानुभूति के बीज उसमें अंकुरित हुए । इस काव्य–संग्रह का लक्ष्य प्रेम, ममता, करूणा, महानता और विश्व बन्धुत्व का भाव प्रसारित करना है । विश्व युद्धों की विभीषिका से विचलित कवि ने अपने पात्रों के द्वारा जन कल्याण का सन्देश देता है । कवि शान्ति का संदेश वाहक बन गया है –

"युद्ध को कितना दिया अवसर
तनिक सा शांति को दे
आदमी जब से हुआ तब से लड़ा है
किन्तु लड़कर किस दिशा में वह बढ़ा है?"

('कालजयी'–पृष्ठ–88)

कवि अपने अगले काव्य संग्रह 'शरीर कविता फसलें और फूल' की कविताओं में व्यष्टि भाव से उँचा उठकर समष्टि के बोध तक पहुँच गया है । कवि मानव मात्र में अपनत्व, पारस्परिक प्रेम, सद्भाव का बीजारोपण होता हुआ देखना चाहता है । इस संग्रह की कुछ कविताओं में कवि जीवन में श्रम का प्रतिपादन करते हुए उसे आत्मसात करने की प्रेरणा देता है । यहाँ कवि ने श्रम साधना के गीत गाये हैं ।

'मान सरोवर दिन' (1980) संग्रह की कविताएँ सम सामयिक स्थितियों से सच्चा साक्षात्कार कराती हैं । इनमें जीवन के प्रति निष्ठा का स्वर ध्वनित हुआ है । कवि को विश्वास है कि भ्रष्टाचार का दमन होगा । यहाँ भी कवि गांधी के विचारों से प्रभावित है।

'सम्प्रति' (1982) संग्रह की कविताओं में कवि नये मूल्यों की खोज में सफल हुआ है । जीवन की निराशाजनक स्थितियों को आशा में बदलकर नये सिरे से जीने का संकेत कवि ने दिया है । कवि ने वर्ग वैषम्य, जाति–पांति, धार्मिक विभिन्नता को तोड़कर मानवीयता द्वारा एकता की प्रतिस्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है । इस संग्रह की कविताओं में देश प्रेम का स्वर है । कवि भ्रष्ट

और स्वार्थी, धनलोलुप सत्ता से देश की शोषित जनता को सुरक्षित करना चाहता है । इन कविताओं में मानवीय सवेदना के स्वर के साथ ही इन्सानियत को महत्व दिया गया है ।

कवि के अपने आगे के काव्य–संग्रह–'नीली रेखा तक', 'ये कोहरे मेरे हैं' और 'तूस की आग'–काव्य–विकास की दृष्टि से कोई नया आयाम प्रस्तुत नही करते । इनमे भी वही सवेदनाए मुखरित हुई है जिनको पिछले काव्य–सग्रहों में वाणी मिली थी।

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य सवेदना का विकास और प्रसार का एक सक्षिप्त परिदृश्य जो उपर उभरकर आता है उसके बीच धँसकर जब हम उनकी काव्य–भाषा की सर्जनात्मक ऋजुता को पर्त–दर–पर्त उधेडकर देखते है तो हम न केवल अभिभूत होते है बल्कि आश्चर्य में डूब जाते है । कैसे वे भाव दशाओ की विभिन्न सतहों को अपनी भाषा की अलग–अलग पर्तों में रचकर प्रस्तुत करते हैं उसका नमूना उनकी चन्द कविताओ से प्रस्तुत किया जा सकता है। उनकी एक छोटी सी कविता 'सन्नाटा' को देखा जा सकता है । यह तो हम अक्सर कहते हैं कि सन्नाटे की भी एक आवाज होती है, वह सायं–सायं करता है किन्तु भवानी भाई सन्नाटे की उस आवाज को किस प्रकार सुनते है । 'सन्नाटा' उनसे बतिया रहा है –

"मै शान्त नहीं, निस्तब्ध नही, फिर क्या हूँ?
मै मौन नहीं हूँ, मुझमें स्वर बहते हैं ।

कभी–कभी कुछ मुझमें चल जाता है,
कभी–कभी कुछ मुझमें जल जाता है
जो चलता है, वह शायद है मेंढ़क हो
वह जुगनू है जो तुमको छल जाता है।

मै सन्नाटा हूँ, फिर भी बोल रहा हूँ,
मै शान्त बहुत हूँ, फिर भी डोल रहा हूँ,
यह सर–सर यह खड–खड यह सब मेरी है,
वह है रहस्य मैं उसको खोल रहा हूँ ।

मैं सूने में रहता हूँ–ऐसा सूना–
ऊगा होता है जहॉ घास भी ऊना,
होते है झाड कही इमली, पीपल के,
धन अन्धकार होता है जिन से दूना।''

('सन्नाटा'–'दूसरा सप्तक'–पृष्ठ–26)

सन्नाटे की इन पर्तो को, आवाजो को और सरसराहट को कवि ने अपनी भाषा मे जिस प्रकार बांधा है लगता है कविता स्वयं सन्नाटे का एक जाल बुनने लगती है । भवानी प्रसाद मिश्र भाषा और संवेदना का रसायन बनाते हैं । शब्दार्थ के अद्वैत की जो समस्या प्रारम्भ से ही कवि की एक केन्द्रीय समस्या रही है और हर कवि उस अद्वैत को अपने–अपने ढंग से साधता रहा है । भवानी भाई ने भी उस अद्वैत को अपने ढग से साधा है । 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने शब्दार्थ के विकास की समस्या पर और शब्दों की सर्जनात्मकता के निरन्तर बदलते हुए पक्ष पर गहराई से विचार किया है । कालिदास ने जिसे वागर्थ की प्रतिपत्ति के रूप में देखा था, गोस्वामी तुलसीदास ने इसे गिरा और अर्थ की अभिन्नता के रूप में देखा था –

''गिरा–अर्थ जल–बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न
बंदौं सीता राम पद जिन्है परम प्रिय खिन्न।''

तुलसी दास का यह दोहा गिरा और अर्थ की अभिन्नता को कितने नये आयामो से सवलित किया है ।

भवानी प्रसाद मिश्र के यहॉ शब्दार्थ का यह अद्वैत एक अजीब स्तर प्राप्त करता है । यह पता ही नहीं लगता कि कवि जो लिख रहा है उसमे से अर्थ कैसे स्वमेव बोल रहा है । पाठक शब्दो को सुनता है उसकी चेतना में अर्थों की नयी–नयी व्यजनाऍ बजने लगती है जैसा कि हमने अभी 'सन्नाटा' शीर्षक कविता मे देखा । इसी प्रकार उनकी किसी दूसरी कविता को उठायें जैसे – 'किस मुँह से' इसमे भाषा की एक दूसरी ही रंगत उतनी ही ऋजु किन्तु उतनी ही व्यजना भरी देखने को मिलती है –

"खून के कितने गुच्छे अंगूर
लटका देते हो तुम
सबेरे
किस मुँह से कोई तुम्हे
टेरे
ओ पहले दिन से
आज तक के सूरज।"

('किस मुँह से'–'भवानी प्रसाद मिश्र–परिचय एव प्रतिनिधि कवि कविताऍ'·स0 विजय बहादुर सिह–पृष्ठ–65–66)

यह छोटी सी कविता जिसका कोई भी शब्द हमे किसी शब्दकोश की ओर नही ले जाता है । अपनी परिणति मे अर्थ की कितनी झंकृतियॉ पाठक के भीतर स्पंदित कर देती है । अनादिकाल से सूर्य उगता है उसका गोला आग की तरह जलता हुआ प्राची के क्षितिज से उठता है लेकिन किस कवि ने उस उठते हुए गोले में 'खून के अंगूरी गुच्छे' को लटके हुए देखा होगा । इतना तीखा एक विशिष्ट जीवन बोध का इतना गहरा बिम्ब सूर्योदय के पर्दे मे कवि

के भीतर कौध उठा है । सूर्य को अर्घ्य देने वाले या उसे टेरने वाले उस यातना के अनुभव का लेश मात्र भी नही अनुभव कर सकेगे जो प्रस्तुत पक्तियो मे कवि मानस को तार–तार कर रही है । अज्ञेय की एक कविता है 'बावरा अहेरी'। उसमे भी कवि ने सूर्य को एक अहेरी के रूप में देखा और आह्वान किया है । उस अहेरी से अज्ञेय अपने भीतर के कल्मस का शिकार करने की प्रार्थना करते है –

> "बावरे अहेरी रे
> कुछ भी अवध्य नही तुझे
> किन्तु एक मेरे मन बिवर की दुबकी कलौंस को
> दुबकी ही छोडकर
> क्या तू चला जायेगा?"

('बावरा अहेरी रे'–'अज्ञेय')

जब हम अज्ञेय की इन पक्यिो की तुलना भवानी प्रसाद की प्रस्तुत काव्य पक्तियो से करते है तो हम भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा की सक्षिप्ति, उसकी वेधकता और जीवनानुभव से सपृक्ति की गहराई हमे अचरज में डालती है । सूर्य की सम्पूर्ण ततःपूतता जीवन की विषमता मे जैसे नगी हो उठी है – भवानी प्रसाद मिश्र की इस छोटी–सी कविता मे ।

भवानी प्रसाद मिश्र की एक प्रसिद्ध और लम्बी कविता अपनी भाषिक संरचना की सारी सभावनाओ के साथ पाठक को अभिभूत करती है । कविता का शीर्षक है – 'शब्दो के तल्प पर' । यह कवि के साथ अन्याय है कि उसकी इस प्रकार की कविताओं का सम्यक अध्ययन अभी नही हो सका है । वर्ना अज्ञेय के 'असाध्य वीणा' निराला के 'राम की शक्ति पूजा' या मुक्ति बोध के 'अंधेरे मे' जैसी कालजयी कविताओ की कोटि में भवानी भाई की इस कविता को रखकर देखा जाता । वास्तव में आधुनिक हिन्दी काव्य के परिसर में जो

वाम और दक्षिण का बटवारा हुआ, वह कई अर्थों मे बहुत दुर्भाग्यपूर्ण रहा । कुछ कवि बाये बाजू के और कुछ दाये बाजू के हिस्से मे डाल दिये गये । उनका तो एक हद तक सम्यक अध्ययन हुआ है किन्तु भवानी प्रसाद इन दोनो बाजुओ के उपर पडते है, इसलिए उनकी अनदेखी होती रही । 'शब्दो के तल्प पर' उनकी एक कालजयी कविता है जिसमे भाषा और एक युग आपस मे ओत–प्रोत है । कविता जिन शब्दो मे खुलती है और जो बन्धन बाधती है, पाठक को चमत्कृत करने के लिए वही काफी है –

"जब चीजे नाचे और
स्थिर रहे और उनकी परछाइयॉ
तन की बिमारियॉ मन को स्वच्छ कर दें
विश्वास की पराजय चिन्ताऍ हर दे
आकाशवाणियॉ लगने लगे
छोटे–बडे पक्षियो के गीत
अनधीत भीतत्व
मुझ पर अपनी आत्मा खोल दे –
कल्पनाऍ आकाश से उतर कर
धरती–भर अपने डैने तौल दे
और लगने लगे कि अब
उपर उठने ही वाली है सारी पार्थिवता
शिवता जब जहॉ नजर डालूॅ
वहीं दिख जाये
तब कोई एक ख्याल जो मेरा है
सार्थक हो और लिख जाये
सूर्योदय हर सन्देह की दीठ में ।"

('शब्दो के तल्प पर' वही·पृष्ठ–66–67)

कविता का यह प्रारम्भिक अश पाठक को एक नये प्रकार के भाषिक इन्द्रजाल की तरह चकित करता है। कबीर की उलटवासियो की तरह अर्थ की सर्वथा अपरिचित छायाओ की खोज की चुनौती देता हुआ यह अंश हमें बिम्बो के नये विस्तृत और रहस्यमय लोक की ओर उन्मुख करता है । जहॉ चीजे नाचती है और उनकी परछाइयॉ स्थिर रहती हैं । कवि के सामने हर सन्देह की दीढ में एक सूर्योदय लिखा हुआ जाता नजर आता है । जैसे–जैसे कविता आगे बढती है बिम्बों का एक ऐसा लोक खुलता है जिसमें सुन्दरता और भयावहता, शिवता और अशीलता का एक ऐसा वलयन सामने खुलता है जिसमे से निरन्तर एक चुनौती उभरती चलती है कि क्या ग्रहण करना है और क्या छोड़ना है? किसे आत्मसात करना है और किसे उगलते चलना है? कवि कहता है कि वह कभी–कभी जैसे अपने भीतर एक ऐसे खण्डहर का एहसास करता है जिसमे हरहराती हुई हवा बहती है और उस हवा में खण्डहर की छत से टगें जीर्ण और धूल से भरे झाड फानूस की जगह बचपन मे उसके देखे हुए विन्ध्या के वन नज़र आते है । जिनके बीच से वह मा की गोद मे बैठा–बैठा गुजरा था और विन्ध्यवासिनी देवी की मढिया पर, जो पहाड के शिखर पर थी उसी मॉ की गोद में बैठा–बैठा पहुॅचा था । ठीक मुक्ति बोध के 'अॅधेरे मे' की स्वप्न यात्रा की तरह भवानी प्रसाद मिश्र की यह मनस यात्रा भी पाठक को वैसे ही चमत्कृत करती है, झकझोरती है और शब्दों की अर्थवती परछाइयो को छूने के लिए बेचैन कर देती है । एक के बाद एक बिम्ब लोक बदलता रहता है । नये परिदृश्य खुलते रहते है और कवि पाठक को अपने साथ मन्त्रमुग्ध और मन्त्रविद्ध लेकर आगे बढता चलता है –

"आकाश तक उडते देखा है मैने
और तो और रेत के कणो को

पडकर चक्रवात मे

चक्रवात मे ही क्यो नहीं

पड जाते मेरे शब्द

या अर्थ ही क्यो नही उठ जाते

चक्रवात की तरह इनके धरातल से।"

('शब्दो के तल्प पर' वही:पृष्ठ–75)

शब्द और अर्थ का यह चक्रवाती आलोडन–विलोडन हमे भाषा के एक नये लोक मे ले जाते हैं । जहॉ कवि यह कह सकता है–

"वाणी का ऐसा ऐश्वर्य

शब्दो के अर्थों से खिचकर बरसे

तो सरसे कम से कम

मेरे मन का बंजर विस्तार ।"

('शब्दों के तल्प पर' वही पृष्ठ–76)

वाणी का ऐसा ऐश्वर्य भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य–भाषा का ऐसा अनूठा सोपान है जहॉ शब्द और अर्थ एक दूसरे मे खोते और खुलते जाते है । जो लोग भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा की ऋजुता की चर्चा करते थकते नही उन्हे कवि की इस कविता को अवश्य पढना चाहिए जहॉ 'शब्दों के तल्प पर' कवि ने कैसे–कैसे रहस्य लोको की रचना की है । एक नमूना देखा जा सकता है इन पक्तियो में –

"प्यार की अपनी जगहे गिनाऊँ

तो गिनाता–गिनाता मर जाऊँ

क्योकि जिन्दगी में और कुछ

बना भी तो नहीं है मुझसे

सिवाय आदमियों, चीजो और ख्यालो में रम जाने के

फिर भी सबसे ज्यादा रमा हूँ जिनमे
वे शब्द हैं प्रकृति और
आदमी के बनाये हुए
धरती और आसमान मे
समाये हुए शब्दो मे
जो केवल ध्वनियॉ है अर्थ हीन
मुझे शब्दों से भी ज्यादा खींचती है
विलीन हो जाता है मेरा सबकुछ उनको सुनते–सुनते
निरर्थक होती है शायद ध्वनियॉ
मणियॉ किन्ही प्रकारो के नागों के सिर में
होती हैं या नही कौन कहे
किन्तु ध्वनियॉ निरर्थक ही होती है ।"

('शब्दों के तल्प पर':वही·पृष्ठ–77–78)

शब्द को अर्थ के गलियारो से निकालकर अर्थहीन गलियों तक ले जाना और उन्हे नागो के सिर मे छिपी मणियो की तरह प्रभायुक्त देखना भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा–सिद्धि के कुछ अपरिभाषेय आयाम हैं । अज्ञेय ने मौन की अभिव्यंजना और उसके अर्थ संकेतों की चर्चा जगह–जगह की है । भवानी प्रसाद मिश्र एक दूसरे ही आयाम की ओर इशारा करते हैं । अर्थहीन ध्वनियों से स्पन्दित होने वाली तरगों की ओर वे लिखते हैं –

"निरर्थक हो ध्वनियॉ तो भी
सम्भावनाऍ सार्थकता की
बहुत जगाती हैं ये मुझमें"

('शब्दो के तल्प पर':वही.पृष्ठ–79)

निरर्थक ध्वनियो के सहारे ही भारतीय ऋषियो ने मन्त्रो की रचना की है और माना है कि जो हम सार्थक शब्दो के द्वारा नही कर पाते उनकी साधना इन निरर्थक ध्वनियो से विरचित मन्त्रो द्वारा कर लेते है । शब्द के व्यक्तित्व को इतनी व्यापकता से समझने का शायद ही किसी दूसरे नये कवि ने साहस किया हो जैसा भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी इस लम्बी कविता 'शब्दो के तल्प पर' में की है । कितने–कितने आयाम शब्द ब्रह्म के रूपाकारो के प्रकट होते है – इस कविता मे । कवि ऐसे स्वरों को सुनता है जिनमे प्रकाश के विभिन्न रंग ही नही है बल्कि जिनके उच्चारण मात्र से –

"खिलना फूलों का अन्धेरे मे
कितना व्यापक हो जाता है ।"

('शब्दों के तल्प पर' वही पृष्ठ–87)

अलग–अलग दिशाओ से आने वाली हवा मकरन्दों से लदी हुई अन्धेरे मे एक नदी जैसी लगने लगती हैं । कवि को लगता है कि वह शब्दों के प्रवहमान धारा के किनारे बसा है । कवि भवानी प्रसाद मिश्र केवल शब्द को ब्रह्म कहकर उसके सामने प्रणत भाव से खड़े हो जाने वाले कवि नही हैं । वह गाते–गाते लीन हो जाने वाले ऐसे कवि है जो अपने प्राणों मे शब्दो के निष्कम्प रहस्यो के दिये जलाते रहते हैं और उनकी चेतना में इन्ही शब्दों के माध्यम से रूप और अरूप, नाद और अनहद बजते रहते हैं। और वे इन्ही अर्थवान और अर्थहीन ध्वनियो के द्वारा अपने मनोलोक को प्रकाशित करते रहते हैं। और जैसे अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' में अजिकेश क़म्बली वीणा को साधने के बाद उसी सिद्धि में खो जाता है । उसी प्रकार भवानी प्रसाद मिश्र को भी यह लगने लगता है –

"या फिर पहुँचू मरण के शिखरो तक
भरकर सूर्योदय सन्देहो की दीठ में

प्राणो में अनुभव हो कि पल पूजा का
पास आता जा रहा है
रहस्य शिशु सारे बैठे है गोद मे।"

('शब्दो के तल्प पर':वही पृष्ठ–92)

अध्याय - 6

डॉ० धर्मवीर भारती : भाषिक कमनीयता

धर्मवीर भारती की कविता के सम्बन्ध मे कुछ भी कहने से पहले, 'दूसरा सप्तक' के लिए दिये गये उनके 'वक्तव्य' को ही उद्धृत करना ज्यादा अच्छा होगा। उन्होने लिखा है कि "इसके पहले कि भारती आपको अपनी कविता का परिचय दे, अच्छा होगा कि आप उसकी कविता को ही उसके बारे में कुछ भी कहने का अवसर दे, क्योंकि अक्सर आदमी अपने अत्यन्त निकटवर्ती, अत्यन्त प्रिय लोगों के मूल्यांकन मे काफी गलती कर जाता है, वही गलती भारती अपनी कविता के बारे में भी कर सकता है, जिसे वह काफी प्यार करता है।" आगे इसी 'वक्तव्य' मे वह कहते हैं–

"यो भारती को साहित्य के हर रूप में दिलचस्पी है और हर तरह की चीज वह लिखता है, यहॉ तक कि एक दर्जी दोस्त की दूकान का उद्घाटन था और उसके प्रबल आग्रह से भारती को उसके लिए एक अत्यन्त कलात्मक विज्ञापन का नोटिस भी लिखना पडा था। लेकिन असल मे भारती का मन कविता मे ही रमता है, क्योंकि कविता के माध्यम से ही भारती आज की बेहद पिसती हुई सघर्ष पूर्ण कटु और कीचड में बिलबिलाती हुई जिन्दगी के भी सुन्दरतम् अर्थ खोज पाने में समर्थ रहा है। कविता ने उसे अत्यधिक पीडा के क्षणों मे विश्वास और दृढता दी है। कविता भारती के लिए शान्ति की छाया और विश्वास की आवाज रही है। जब भारती की चेतना ने पख पसारे तब छायावाद का बोल बाला था। उसे लगा कि कविता की शहजादी इन अपर्थिव कल्पनाओं, टेढे–मेढे शब्द जालों, अस्पष्ट रूपकों और उलझे हुए जीवन दर्शन की शिलाओं से बधी उदास जल–परी की तरह कैद है और भारती को चाहिए कि वह उसे उन्मुक्त कर सर्वथा मानवीय धरातल पर उतार लाये ताकि वह फैली–फैली चॉदी की बालू पर आदम की सन्तानों के साथ बेहिचक आंख मिचौनी खेल सके, उनके सीधे–सादे सुख–दुःख, वासनाओं–कामनाओं को समझ सके, उन्हीं की बोली मे बोल सके। इसलिए भारती ने सबसे पहले लिखे

सरलतम भाषा मे रग–बिरंगी चित्रतात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मासलगीत, जो न तो मन की प्यास को झुठलाये और न उस के प्रति कोई कुठा प्रकट करे, जो सीधे ढ़ग से पूरी ताकत से अपनी बात आगे रखे। आदमी की सरल और सशक्त अनुभूतियों के साथ–साथ निडर खेल सके, बोल सके।

('दूसरा सप्तक'–'स0 अज्ञेय'– पृष्ठ–158–159)

अपनी काव्य–भाषा के सम्बन्ध मे इसी वक्तव्य में उन्होनें एक जगह कहा है कि– ''भाषा के प्रश्न को कभी भारती ने अधिक महत्व नहीं दिया। भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिए, बस। न तो पत्थर का ढोंका बनकर कविता के गले में लटक जाये और न रेशम का जाल बनकर उसकी पांखो में उलझ जाये।''

('दूसरा सप्तक' –पृष्ठ–160)

भारती का काव्य सदियों पुरानी मान्यताओं को ढहाने का पक्षधर है, क्योंकि परम्परागत बासी मूल्यों को नये क्षितिजों के अनुरूप पाना नामुमकिन है। इनकी रचनात्मक चेतना मे युग बोध के साथ परम्परागत पूर्वा–पर प्रंसगों की विवेक सम्मत खोज है और इसीलिए वे बदलते परिवेश के अनुसार नया रूपान्तरण प्रस्तुत कर सके है। इन्होने अपने निर्माण और विकास का पथ कतिपय गलियो से गुजकर ढूँढा है। वे घ्वसं, अनास्था, विघटन आदि के बीच सृजन की पुकार सुनते है। उनमें कवि कर्म की पूरी जागरूकता है–'' हौसले तो पहाड़ों को उलट देने के है।'' भारती काव्य जिन गलियो से गुजरा है उनमें पहली गली है– रूपासक्ति और उद्‌दाम यौवन के मांसल गीतो की। यह सोपान शरीर सौन्दर्य की उपासना और वासनात्मक भावनाओं का उन्मुक्त काव्य है। यह' बेहिचक ऑख मिचौनी' उनकी किशोर भावुकता और रोमानी प्रवृत्ति का परिचायक है।

भारती के काव्य का दूसरा सोपान उस आन्तरिक संघर्ष का है, जहॉ कवि विराट जीवन के बीच दु:ख–दर्दों में गम्भीर अर्थ ढूढ़ँता है। अपने अहँ को विगलित करते हुए ध्वस और निर्माण, आस्था और अनास्था, अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच जीनव के सार्थक तत्वों की रचनात्मकता की तलाश करता है। तीसरे सोपान मे कवि जनवादी भूमिका निभाता हुआ व्यापक मानववादी चेतना का परिचय देता है। यहॉ उसका वैचारिक स्तर और चिन्तन सही रूप मे नयी कविता का प्रतिनिधत्व करने लगता है। अपने विकास कम में इसी विन्दु पर उन्हे तीव्र एहसास होता है कि सबसे प्रिय कविताएँ वे है जो गटर में पड़े शराबियों, हथौडा चलाते लोहारो और धूल मे खेलते बच्चों की भोली ऑखों मे झलकती है, लेकिल जिन्हे न अभी किसी ने लिखा है और ने किसी ने छापा।

कवि के निर्माण और विकास का चौथा सोपान उनके जीवन दर्शन और चिन्तन के अनुरूप 'कनुप्रिया' और 'अंधायुग' मे दिखलाई पडता है। ये दोनो गीत नाट्यात्मक प्रबन्ध नयी कविता की श्रेष्ठ उपलब्धियॉ है।

'ठडा लोहा' के प्रथम संस्करण की भूमिका में भारती न अपने विकास कम की गलियो और मोड़ो की स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– ''किशोरावस्था के प्रणय रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन आत्मसमर्पणमयी वैष्णवी भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अह्म का शमन कर अपने बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए सकीर्णताओं और कट्‌रता से ऊपर एक जनवादी भावभूमि की खोज मेरी इस छन्द यात्रा के यह प्रमुख मोड़ रहे हैं।''

('ठडा लोहा' की भूमिका से उद्धृत)

हिन्दी जगत को भारती की कविताएँ पहली बार दूसरा सप्तक (1951) मे दिखाई पडी। हलॉकि वे इसके पूर्व ही तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओ में प्रकाशित होकर अपने रूमानी तारल्य भरे गीतों और कविताओं के माध्यम से चर्चित हो चुके थे। इसमें कुल छोटी–बड़ी तेरह कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं को

पढते हुए भारती के कवि व्यक्तित्व के प्रस्थान बिन्दु दिखायी पडते है, जिनमे एक कोमल युवा–मन की अनुभूतियों का आवेग है। यद्यपि ये कविताएँ कवि का प्रस्थान बिन्दु है किन्तु इनमे नयी कविता के अधिकाश प्रतिमान मसलन अनुभूति की जटिलता और तनाव, ईमानदारी और प्रामाणिक मूल्य, विसगति और विडम्बना, प्रतीकात्मकता और नाटकीयता, परिवेश और मूल्य, काव्यभाषा और सृजनशीलता जगह–जगह मिलते है। 'तार सप्तक' मे गिरजाकुमार माथुर ने अपनी कविताओ के साथ जिस गीत– धर्मी काव्य–संवेदना का पुनरूत्थान किया था, वह बहुत व्यापक फलक के साथ धर्मवीर भारती की कविताओं मे दिखाई पडती है। यह गीत–धर्मी संवेदना भारती के काव्य–संसार मे कुछ इस तरह समायी हुई है, जैसे सीप मे बन्द मोती।

भारती की रचनाओं मे निबद्ध संवेदना छायावाद के अन्तिम दौर की रूमानियत से जुड़ी होने के बाद भी उससे अलग किस्म की है। यह भिन्न सवेदना ही भारती की काव्य भाषा को नया रूप दे देती है। जिनकों निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है।

1. भारती की काव्य–भाषा में प्रवाह तत्व
2. भाषा मे तत्समता का आग्रह नही यथा भाव
   भाषा का निर्वाह।
3. भारती के काव्य मे बिम्ब–विधान
4. भाषा में विचार एव अनुभूति का सगुफन

छंद के स्तर पर निराला के बाद भारती ही ऐसे कवि है जिनमें छद की मात्रिक गणना का अतिक्रमण करने के बावजूद जबरदस्त लययुक्त प्रवाह है। भाषा का लहरिल प्रवाह भारती की विशिष्ट पहचान है। उसमे हिन्दी के, उर्दू के सभी शब्द घुल जाते हैं। उच्छल और तरल अनुभूतियाँ अपने प्रवाह में सारे अनघुल तत्वों को भी बहाये चली जाती है।

"गुनाहो से कभी मैली हुई बेदाग तरूनाई?
सितरो की जलन से बादलो पर ऑच कब आयी?
न चन्दा को कभी व्यापी अमा की घोर कजराई
बडा मासूम होता है गुनाहो का समर्पन भी
हमेशा आदमी मजबूर होकर लौट आता है
जहॉ हर मुक्ति के, हर त्याग के, हर साधना के बाद।
मेरी जिन्दगी बरबाद,
इन फिरोजी होठो पर मेरी जिन्दगी बरबाद।"

('दूसरा सप्तक'–'गुनाह का गीत'– पृष्ठ–165)

'दूसरा सप्तक' में सकलित 'गुनाह का गीत' शीर्षक कविता की इन पंक्तियो की प्रवाहमयता प्रेम, प्रणय, कि लिए परिस्थिति तथा वातावरण के साथ मनः स्थितियो के अनेक भावस्तरो को उद्घटित करती है। इस गीत की व्यंजना में रूपासक्ति के साथ–साथ प्रणय की आदिम पीपासा झलकती है। 'सितारो की जलन से बादलो पर ऑच' 'अमा की घोर कजराई,' 'बड़ा मासूम होता है' गुनाहो का समर्पन' में जो प्रवाह है, वह अनायास ही इस कविता की गीतधर्मी सवेदना को बढा देता है।

"अगर मैंने किसी के होठ के पाटल कभी चूमे
अगर मैने किसी के नैन के बादल कभी चूमे
अगर मैने किसी की मदभरी ॲगडाइयॉ चूमीं
अगर मैने किसी की सॉस की पुरवाइयॉ चूमी
महज इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो।
महज इस से किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो।"

('गुनाह का दूसरा गीत'. 'दूसरा सप्तक'. पृष्ठ–193)

'दूसरा सप्तक' मे सकलित 'गुनाह का दूसरा गीत' शीर्षक गीत कवि के रोमाटिक व्यक्तित्व, प्रेम, सौन्दर्य और कैशोर्य की सहज कल्पनाशील पावनता की भावना से ओत–प्रोत है। यह कविता काव्यभाषा की पूरी प्रवाहमयता के साथ कवि के रूप– सौन्दर्य की तीखी आसक्ति को व्यक्त करती है। वह गुनाहो का गीत गाते हुए तनिक भी सकोच या हिचक का अनुभव नही करता। वह सहज ही कहता है, कि–'महज इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो?' यह पूरी कविता आवेशमय है । इसमें भारती की तरल अनुभूतियॉ उनकी काव्यभाषा के प्रवाह मे सारे तत्वो को बहाये चली जाती है।

"खारे ऑसू से धुले गाल,
रूखे हलके अधखुले बाल,
बालो में अजब सुनहरापन
झरती ज्यों रेशम की किरनें संझा की बदरी से छन–छन,
मिसरी के होठो पर सूखी,
किन अरमानो की विकल प्यास।
तुम कितनी सुन्दर लगती हो, जब तुम हो जाती हो उदास।"

('उदास तुमः' 'दूसरा सप्तक' – पृष्ठ–169)

'दूसरा सप्तक' में संकलित 'उदास तुम' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों मे वास्तव मे उदास प्रिया के रूप मे सौन्दर्य की एक भंगिमा है, रोमैंटिक मूड की उदासी नहीं। वह अपनी उदास चेष्टा में 'झरती ज्यों रेशम की किरणे संझा की बदरी से छन–छन' के रूप में रूपायित हो रही है। इस कविता की प्रवहमानता में मानो स्मृतियो की बरसात हो रही है। जिसमें अपने प्रिया के प्रति एक तरल आत्मीयता पूर्ण मनोमुग्धकरी भाव और मासूमियत है। प्रेम के कल्पना लोक में यह उदासी भी सुन्दर लगती है।

"अब तो नींद निगोड़ी सपनों–सपनों भटकी डोले

कभी कभी तो बडे सकारे कोयल ऐसे बोले

ज्यो सोते मे किसी विषैली नागिन ने हो काटा

मेरे सग–सग अकसर चौक–चौंक उठाता सन्नाटा

पर फिर भी कुछ कभी न जाहिर करती हूँ इस डर से

कहीं न कोई कह दे कुछ, ये ऋतु इतनी बदनाम है।

ये फागुन की शाम है!"

('फागुन की शाम'–'ठडा लोहा'–'धर्मवीर भारती ग्रन्थावली'–3, पृष्ठ–29)

'ठडा लोहा' सग्रह मे सकलित 'फागुन की शाम' शीर्षक कविता की इन पक्तियों मे विरह की गहरी अनुभूति इस तरह से प्रवाहित हो रही है मानो अतीत में प्रेयसी के सग बिताये गये एक–एक क्षण चल–चित्र की तरह प्रेमी के सामने उपस्थित हो जाते हैं। 'नीद–निगोड़ी सपनो–सपनो भटकी डोले', 'बडे सकारे कोयल ऐसे बोले', 'मेरे सग–सग अकसर चौक–चौंक उठता सन्नटा' इनमें जो प्रवाह है, वह इस कविता के गीति को अनायास ही बढ़ा देती है।

"अभी–अभी यौवन ने ली है अरसौही अगॅड़ाई।

जैसे सावन के बूदो से घायल हो पुरवाई,

अभी नजर मे लाज कसी है,

जैसे सागर की लहरों पर हो नमकीन खुमार।

अभी करो मन तुम रतरानी किरनों से सिगार।"

('कच्ची सॉसों का इसरार'–'ठडा लोहा'– ध0 भा0 ग्र– पृष्ठ–40)

'ठडा लोहा' सग्रह मे संकलित 'कच्ची सॉसो का इसरार' कविता में कवि ने किशोर प्रेम की विह्वल आंकाक्षा मे वयः सन्धि की मनः स्थिति को वाणी देता है। कवि किशोरावस्था की गगा–जमुनी वय की अबोधता के प्रति आकर्षित है। वह मानता है कि किशोर जीवन अधिक सुकुमार, अल्हड और कल्पनाशील है। परन्तु किशोर के साथ जब यौवन का प्रवेश होने लगता है तो वह 'सावन की

बूदो से घायल पुरवाई' जैसी 'यौवन की अरसौही अंगडाई' तथा 'नजरों की कसी हुई लाज सागर की लहरो के नमकीन खुमार' के साथ व्याप जाती है।

"भीगे केशो मे उलझे होगे थके पख
सोने के हसो–सी धूप यह नवम्बर की
उस आगन मे भी उतरी होगी
सीपी के ढालो पर केसर के लहरो–सी
गोरे कन्धों पर फिसली होगी बिन आहट
गदराहट बन–बन ढली होगी अंगों मे ।"

('नवम्बर की दोपहर'–'सात गीत वर्ष'– ध0 भा0 ग्र– पृष्ठ–130)

'सात गीत वर्ष' सग्रह मे संकलित नवम्बर की दोपहर' शीर्ष कविता अपनी काव्य भाषा के प्रवाह मे प्रकृति के बडे मोहक वातावरण का सृजन करती है। जिसमें पिछली स्मृतियॉ सहज ही कवि के मानस पटल पर उतर आती है, जिसके कारण प्रणयोन्मेष के भावावेश के बीच उसका मन बेचैन हो जाता है। वह दर्द का अनुभव करता है।

"प्रात धूप की जर तारी ओढनी लपेटे
अभी–अभी जागी
खुमार से भरी
नितान्त कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघ धूप के
औचक आलिगन में पिस कर
रतिश्रान्ता– सी मलिन हो गयी।"

('घाटी का बादल'–'सात गीत वर्ष' वही–पृष्ठ–197)

'सात गीत वर्ष' संकलन में संकलित 'घाटी का बादल' शीर्षक कविता में कवि 'मेघधूप' के माध्यम से अपनी उस खोज को अभिव्यक्ति देता है। जो प्रेम

के प्रति समर्पण और दर्द भरी प्रतीति के बीच उसे आस्था के रूप में मिलती है। सारे रग–रूप आकर के विलीन हो जाने के बाद कवि अपने 'मै' को अकेला पाता है। धीरे–धीरे अपने सघर्ष मे वह निराश और विवश होता जाता है। और अधियारे की इस चढाई और भटकन मे उसे दूसरे बौने के रूप मे अपनी ही आस्था का संबल मिलता है। इस कविता का प्रवाह भारती की काव्य–भाषा की गीत धर्मी सवेदना को अनायास ही बढा देती है।

"तुम्हारा सॉवरा लहराता हुआ जिस्म
तुम्हारी किचित् मुडी हुई शख–ग्रीवा
तुम्हारी उठी हुई चन्दन बॉहे
तुम्हारी अपने मे डूबी हुई
अधखुली दृष्टि
धीरे–धीरे हिलते हुए
तुम्हारे जादू भरे होठ।"

('कनुप्रिया'–'शब्द अर्थ हीन'– वही– पृष्ठ–257)

'कनुप्रिया' संग्रह मे 'शब्द. अर्थ हीन' शीर्षक से संकलित इस कविता में रूप और रस, शब्द और लय, ध्वनि और लेख सब के सब एकात्म होते नजर आते है। यहॉ ध्वनि, चित्र और राग एक साथ प्रवाहित हो रहे है। 'सॉवरा लहरात हुआ जिस्म,' 'किंचित मुड़ी हुई' शंख ग्रीवा', 'उठी हुई चन्दन बॉहें,' 'अपने मे डूबी हुई अध खुल दृष्टि', 'धीरे–धीरे' हिलते हुए जादू भरे होठ– कनुप्रिया का ऐसा मांसल सौन्दर्य उसे अभिभूत करता है। और वह अपनी इस अनुभूति को पूरी तन्मयता के साथ व्यजित करता है।

"घाट से लौटते हुए
तीसरे पहर क आलसायी बेला मे
मैने अक्सर तुम्हे कदंब के नीचे

चुपचाप ध्यान मग्न खडे पाया
मैने कोई अज्ञात वन देवता समझ
कितनी बार तुम्हे प्रणाम कर सिर झुकाया
पर तुम खडे रहे अडिग, निर्लिप्त, वीत राग, निश्चल।
तुमने कभी उसे स्वीकारा ही नहीं।
x x x
और मुझ पगली को देखो कि मै
तुम्हे समझती थी कि तुम कितने वीतराग हो
कितने निर्लिप्त।''

('कनुप्रिया— पूर्वराग'· 'तीसरा गीत'—वही— पृष्ठ—210—211)

'कनुप्रिया' सग्रह मे संकलित 'पूर्व रागः तीसरा गीत' शीर्षक कविता मे भारती ने राधा की भाव विह्वलता, समर्पण की आकांक्षा, परितृप्ति की आतुरता, प्रगाढ साहचर्य और उदासी को सघन और मार्मिक वाणी दी है। कनुप्रिया की भाव विभोर मनः स्थितियॉ इस कविता की भाषा के लहरिल प्रवाह मे मानो स्वतः ही प्रवाहित हो रही है।

भारती के काव्य—भाषा की दूसरी बड़ी विशेषता है—

भाव के अनुकूल भाषा। उन्होंने कही भी कविता के मूल भाव पर तत्समता को हावी होने नहीं दिया है।

''अगर डोला कभी इस राह से गुजरे कुबेला
यहॉ अबवा तरे रूक
एक पल विश्राम लेना
मिलो जब गॉव—भर से बात कहना, बात सुनना
भूलकर मेरा
न हरगिज नाम लेना

अगर कोई सखी कुछ जिक्र मेरा छेड बैठे

हॅसी मे टाल जाना बात

ऑसू थाम लेना।''

('डोले का गीत'–'ठडा लोहा'– ध0 भा0 ग्र0– पृष्ठ–26)

'ठडा लोहा' संग्रह की 'डोले का गीत' शीर्षक कविता की इन पंक्तियो में राह, 'कुबेला, 'अबॅवा' 'तरे, 'गावॅ भर और 'थाम' जैसे शब्द भोजपुरी और अवधी के प्रचलित शब्द है। किन्तु ये शब्द इस कविता के प्रवाह के लिए आवश्यक से जान पडते है। इन शब्दों के बेहतर इस्तेमाल से कवि ने मानों लोकसंस्कृति में विदाई का एक मुहूॅर्त उपस्थित कर दिया हो।

''गोरी–गोरी सोंधी धरती–कारे–कारे बीज

बदरा पानी दे।

क्यारी–क्यारी गूॅज उठा संगीत

बेने वालों। नयी फसल में बोओगे क्या चीज?

बदरा पानी दे।''

('बोआई का गीत'– 'ठडा लोहा'–धर्मवीर भारती ग्रन्थावली–पृष्ठ–50)

'ठंडा लोहा' संग्रह की 'बोआई का गीत' शीर्षक कविता ग्रामीण सवेदना, वहॉ के पर्व–त्यौहार और वहॉ की ठेठ स्थानीयता से भरपूर दिखाई देती है। बादल के लिए 'बदरा' काले–काले के लिए 'कारे–कारे' जैसे प्रयोग कविता की मूल संवेदना को बढने में सहायक सिद्ध हुए है, साथ ही उसकी प्रवाहमयता को बहाते भी है।

''झुरमुट मे दुपहरिया कुम्हलायी

खेतो पर अन्हियारी घिर आयी

पश्चिम की सुनहरिया धुॅधरायी

टीलों पर, तालों पर

इक्के–दुक्के अपने घर जाने वालो पर

धीरे–धीरे उतरी शाम!"

('कस्बे की शाम'– 'सात गीत वर्ष'– ध0 भा0 ग्र0 पृष्ठ–157)

'सात गीत वर्ष' संग्रह मे संकलित 'कस्बे की शाम' शीर्षक कविता मे शाम का वर्णन करते समय कवि ने उस भाव के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। दोपहर के लिए 'दुपहरिया', अंधेरे के लिए 'अहियारी' सुनहरेपन के लिए 'सुनहरिया' और धुँधलेपन के लिए 'धुँधरायी' जैसे शब्दो का प्रयोग करके तत्समता को कही भी कविता के मूल भाव पर हावी नही होने दिया है।

"छिन मे धूप

छॉह छिन ओझल

पल–पल चंचल

गोरी, दुबली, बेला उजली, जैसे बदली क्वार की।"

('एक छवि'– 'सात गीत वर्ष'–वही–पृष्ठ–190')

'सात गीत वर्ष' सग्रह की 'एक छवि' शीर्षक कविता मे क्षण के लिए 'छिन' और छाया के लिए 'छॉह' जैसे लोक प्रयुक्त शब्दो से कवि सहज ही लोक संवेदना को जागृत करता है, और लोकमन तक अपनी पैठ बना लेता है।

"कितनी बार जब तुमने अर्द्धोमीलित कमल भेजा

तो मै तुरन्त समझ गयी कि तुमने सझा बिरियॉ बुलाया है

कितनी बार जब तुमने ॲजुरी भर–भर बेले के फूल भेजे

तो मैं समझ गई कि तुम्हारी ॲजुरियों ने

किसे याद किया है।"

('आम्र– बौर का अर्थ'– 'कनुप्रिया'– ध0 भा0 ग्र0 – पृष्ठ–220)

'कनुप्रिया' के अन्तर्गत 'आम्र– बौर का अर्थ' शीर्षक कविता की इन पंक्तियो में शाम के समय के लिए 'संझा बिरियॉ' और अंजुली के 'ॲजुरी' जैसे

देशज शब्दो का प्रयोग हुआ है, जो 'कनुप्रिया' के प्रेमालाप के सम्पूर्ण भाव–अनुभाव को व्यजित करने में सहायक होता है।

"खा.. मो .श।

बोलो मत......

एक भी आवाज, एक भी सवाल, लबो की हल्की–सी जुम्बिश भी नही

नहीं, एक हल्की–सी दबी हुई सिसकी भी नही।

हर दीवार के कान है

और दीवार के इस पार का हर कान

दीवार के उस पार चुगलखोर मुँह बन जाता है

जहाँ शहशाह

हकीमो, नजूमियों, खोजों और नक्शानवीसों से घिरे

अपनी जिदगी की अखिरी रात गुजार रहे है।"

('पुराना किला'– 'सपना अभी भी' ध0 भा0 ग्र0–पृष्ठ–283)

'सपना अभी भी' सग्रह मे संकलित 'पुराना किला' शीर्षक कविता में मुगल कालीन दरबार की झाकी प्रस्तुत की गयी है, उसी दरबार के अनुकूल भाषा प्रयोग भी है।'खामोश', 'जुम्बिश', 'नजूमियों, "नक्शानवीसो' आदि उर्दू फ़ारसी शब्दो का प्रयोग करके कवि ने कविता की प्रवाहमयता को बढाया ही है। यहॉ हिन्दी और उर्दू के शब्द एक दूसरे से घुल गये है।

"दीदी के धूल भरे पाव

बरसों के बाद आज

फिर यह मन लौटा है क्यों अपने गाव,

अगहन की कोहरीली भोरः

हाय कही अब तक क्यों

दूख–दूख जाती है मन की वह कोर!"

('दीदी के धूल भरे पॉव'–'सपना अभी भी' ध0 भा0 ग्र0–पृष्ठ–274)

'सपना अभी भी' सग्रह मे सकलित 'दीदी के धूले भरे पॉव' शीर्षक कविता की इन पक्तियों मे ग्राम के लिए 'गाव' तथा जाडे के प्रारम्भिक दिनो की हल्के से कोहरे से युक्त सुबह को 'अगहन की कोहरीली भोर' तथा मन के किसी कोने मे उठने वाली पीडा को 'दूख–दूख जाती है मन की वह कोर' कहकर कवि ने भावनुकूल भाषा का निर्वाह किया है।

भारती की काव्य भाषा की तीसरी और सम्भवत सबसे सघन विशेषता है– उनका बिम्ब विधान। भारती ने अपने काव्य मे जिस प्रेम,प्रणय,अभिसार, रूपासक्ति और प्रेमाकाक्षा के उद्दाम आवेग के क्षणो को वाणी दी है, उनके लिए यह आवश्यक भी था कि वे बिम्बों का सघन संयोजन करते। भारती के बिम्बों में काव्यार्थ को प्रसगानुकूल बनाने की पूरी क्षमता है ।

"ये शरद के चांद से उजले धुले– से पॉव
मेरी गोद मे!
ये लहर पर नाचते ताजे कमल की छॉव,
मेरी गोद में!
दो बडे मासूम बादल, देवताओं से लगाते दॉव,
मेरी गोद में!"

('तुम्हारे पॉव मेरी गोद मे'–'दूसरा सप्तक'–पृष्ठ–167)

'दूसरा सप्तक' में सकलित 'तुम्हारे पॉव मेरी गोद में' शीर्षक कविता में भारती अपनी रोमैंटिक प्रणयाकांक्षा, उद्याम लालसा और तीखी रूपासक्ति को कोमल सुकुमार कल्पना के रगों में पावन बना देते हैं। यहॉ कवि ने प्रिया के चरणो के माध्यम से उसके रूप सौन्दर्य तथा प्रभावाकर्षण को अनेक रंग–रूप–वर्ण–स्पर्श के प्रकृति बिम्बो में व्यक्त किया है। 'शरद के चॉद से उजले धुले से', 'लहर पर नाचते ताजे कमल की छावॅ –से' और 'देवताओं से

लगाते दाँव दो बडे मासूम बादल' के रूप में पावो की कल्पना करते हुए कवि के सामने उसकी प्रेयसी प्रत्यक्ष हो जाती है।

"रख दिये तुमने नजर मे बादलो को साध कर,
आज माथे पर, सरल सगीत से निर्मित अधर,
आरती के दीपकों की झिलमिलाती छॉह मे
बॉसुरी रखी हुई ज्यो भागवत के पृष्ट पर।"

('चुम्बन'– 'दूसरा सप्तक'– पृष्ठ–171)

'दूसरा सप्तक' मे संकलित 'चुम्बन' शीर्षक मुक्तक मे प्रणय का पूजा–भाव लक्षित होता है। 'नजर में बादलो को साधकर' 'सरल सगीत से निर्मित अधर'द्वारा प्रेयसी के माथे पर दिये गये चुम्बन को भारती ने 'भागवत के पृष्ट पर रखी हुई बॉसुरी' के बिम्ब से बांधा है। जो स्पर्श बिम्ब का अन्यतम उदाहरण है। इस बिम्ब विधान के द्वारा कवि ने चुम्बन जैसी मांसल क्रिया को एक पावन आराधना से अभिसिचित अनुभूति में बदल दिया है । इसीलिए भारती को प्रणय का वैष्णव कहा जा सकता है। आखिर सारी वैष्णवता विष्णु की भक्ति ही तो है ।

"फूलो राह न रोको। तुम
क्या जानो जी कितने दिन पर
हरी बॉसुरी को आयी है मोहन के होठों की याद।
बहुत दिनों के बाद,
फिर, बहुत दिनों के बाद खिला बेला, मेरा ऑगन महका।"

('बेला महका'– 'ठंडा लोहा–वही–पृष्ठ–33)

'ठडा लोहा' में सकलित 'बेला महका' शीर्षक कविता की इन पंक्तियो में प्राकृतिक परिवेश के बीच प्रिय की स्मृति सारे वातावरण को मादक बना देती

है। यहाँ 'हरी बॉसुरी' और 'मोहन के होठ' के बिम्ब तरूणाई की मादक रोमैटिक भावना को पावन गध मे व्यंजित करते है।

"अभी शोख बचपन के पखो में दुबका है रूप।

जैसे बादल की परतों में ढॅकी सलोनी धूप।

धुॅआ—धुॅआ सी उडती नजरे,

ज्यों धिर आये मेघदूत वाले बादल कचनार।

अभी करो मत तुम रतरानी किरनो से सिंगार।

('कच्ची सॉसों का इसरार'—'ठडा लोहा'—वही—पृष्ठ—40)

'ठडा लोहा' सग्रह में संकलित 'कच्ची सॉसो में इसरार' शीर्षक कविता में कवि वयः सन्धि की शारीरिक, मानसिक परिस्थिति का सटीक बिम्ब प्रस्तुत कर सका है। यौवन में रूप सौन्दर्य विकसित हो जाता है, पर किशोरवस्था में वह केवल झलक मारता है। उसी झलक को कवि ने 'शोख बचपन के पखो मे दुबके हुए रूप' और 'बादलों की परतों मे ढकी सलोनी धूप' के बिम्ब में बांधा है।

"यह पान फूल सा मृदुल बदन

बच्चों की जिद सा अल्हड मन

तुम अभी सुकोमल, बहुत सुकोमल, अभी न सीखो प्यार!"

('मुग्धा'— 'ठंडा लोहा'—वही—पृष्ठ—41)

'ठंडा लोहा' संग्रह की 'मुग्धा' शीर्षक कविता में कवि किशोरावस्था की गगा—जमुनी वय की अबोधता के प्रति आकर्षिक है। वह मानता है कि किशोर जीवन अधिक सुकुमार और अल्हड तथा कल्पनाशील है वह इस वयः सन्धि की मनः स्थिति को 'बच्चो की जिद सा अल्हड़' और शारीरिक सुकुमारता को 'पान फूल की मृदुलता' के बिम्ब में बांधता है।

"ढल रही है

मेघ की चूनर लपेटे दोपहर

एक उचटा हुआ–सा

सुनसान सन्नाटा अकेला जग रहा है

मेघ धूमिल दिशाओ की बॉह में!

x x x

छू गयी मुझको

न जाने कौन बिसरी बात

भूला क्षण

जिस तरह छू जाय नागिन

फूल को खिलते पहर

ढल रही है

मेघ की चूनर लपेटे दोपहर।"

('मेघ दुपहरी'– 'सात गीत वर्ष' – वही – पृष्ठ–148)

'सात गीत वर्ष' संग्रह की 'मेघ दुपहरी' शीर्षक कविता में रोमैंटिक प्रेम का उल्लास धनी होती उदासी और जीवन की विवशता में बदलता गया है। प्रकृति के परिवेश के साथ प्रेम की बीती स्मृतियॉ बीतरागी उदासी का वातावरण बनाती है। इस कविता मे बढती शाम के साथ बीतरागी मन की उदासी का प्रभावी बिम्ब है कवि के मन को कोई बिसरी बात, भूला क्षण इस तरह छू गया है, जैसे खिलते हुए फूल को नागिन छू ले।

मैं क्या जिया?

मुझको जीवन ने जिया

बूंद बूंद कर पिया, मुझको

पीकर पथ पर खाली प्याले–सा छोड़ दिया

मै क्या जला?

मुझको अग्नि ने छला

मैं कब पूरा गला, मुझको

थोडी सी ऑच दिखा दुर्बल मोमबत्ती–सा मोड दिया

देखो मुझे,

हाय मैं हूँ वह सूर्य

जिसे भरी दोपहर मे

ॲधियारे ने तोड दिया।

('उपलब्धि'–'सात गीत वर्ष'–वही–पृष्ठ–155)

'सातगीत वर्ष' संग्रह की 'उपलब्धि' शीर्षक कविता में कवि सुख में लुट लुट कर कन–कन छीजते हुए और दु:ख मे घुट–घुट कर खीजते हुए, पीछे छूट गया है। मन में एक गहरा अवसाद उसको घेरे हुए है, जिसके बीच उसे गहरी निरर्थकता की अनुभूति हो रही है। जीवन के प्रवाह मे प्रेम के भावावेग मे जीकर वह 'पीकर पथ पर खाली प्याले सा' छोड दिया गया है। इस कविता मे प्रयुक्त बिम्ब 'अग्नि का छल से थोडी आच देकर दुर्बल मोंमबत्ती–सा' मोड देना अथवा 'भरी दोपहर मे सूर्य का अंधियारे से तोड' दिया जाना इस निरर्थकता के बोध को उक्ति परक बनाते है।

"यह बादल का ताना बाना

बेहद डूबा–डूबा सा जी

जैसे कोहरे मे डूबी हो

रगीन गुलाबों की घाटी"

('यह ढलता दिन'–'सात गीत वर्ष'–वही–पृष्ठ–179)

'सातगीत वर्ष' संग्रह की 'यह ढ़लता दिन' शीर्षक कविता में किशोर मन के प्रेम की अवशेष स्मृतियों को दृश्य बिम्ब में बांधा गया है। 'डूबे–डूबे से मन' को 'कोहरे में डूबी हुई रंगीन गुलाबों की घाटी' से बिम्बित किया गया है। वह

मन जो कभी प्रेम के उल्लास मे 'गुलाबों की रगीन घाटी' के समान प्रफुल्लित था, वही उदास होने पर ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे गुलाबों की रगीन घाटी पर कोहरे की पर्त चढ गयी हो।

"धूल मे मिली हूँ
धरती मे गहरे उतर
जडो के सहारे
तुम्हारे कठोर तने के रेशो मे
कलियॉ बन, कोपल बन, सौरभ बन, लाली बन
चुपके से सो गई हूँ
कि कब मधुमास आए और तुम कब मेरे
प्रस्फुटन से छा जाओ।"

('पहला गीत'–'पूर्वराग'–'कनुप्रिया'–वही –पृष्ठ–207)

'पूर्वराग' के पहले गीत मे कनुप्रिया का भावविभोर रूप सामने आता है। अशोक वृक्ष के पुष्पित होने की कवि प्रसिद्धि का उपयोग करते हुए उसकी प्रणयाकाक्षा का अंकन किया गया है। इस गीत में सर्जन की प्रकृत कामना प्रकृति–पुरूष के आदि बिम्ब से व्यजति हुई है।

"थी वन तुलसा की गंध वहॉ था पावन छायामय पीपल
जिसके नीचे धरती पर बैठे थे प्रभुशांत, मौन निश्चल

x x x

अपनी दाहिनी जाघ पर रख
मृग के मुख जैसा बायॉ पग
टिक गये तने से, ले उसॉस
बोले 'कैसा विचित्र युग था!"

('प्रभुकी मृत्यु'–'अन्धायुग'– वही–पृष्ठ–447–448)

'अंधायुग' गीतिनाट्य के 'प्रभुकी मृत्यु' शीर्षक समापन अंक के इस कथा गायन मे उस परिस्थिति का वर्णन है जहॉ मृत्यु के सन्निकट प्रभु पीपल की छाया मे धरती पर बैठे हैं और वनतुलसा की गन्ध उस सारे वातावरण मे व्याप रही है। वे दाहिनी जाघ पर 'मृग के मुख जैसा बायॉ पग' रखकर तने से टिक गये है और बीते हुए युग पर उसॉस लेकर टिप्पणी करते है. 'कैसा विचित्र युग था।' नाटककार ने समापन का दृश्य नाटकीय चरम के साथ प्रतीकार्थ की गहरी व्यजना मे प्रस्तुत किया है। कृण्ण के मरण को एक युग की समाप्ति और नये युग के प्रारम्भ के प्रतीक के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

भारती के काव्य भाषा की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी मिथकीय सवेदना है। काव्य भाषा मे बिम्ब और प्रतीक की योजना तो महत्वपूर्ण होती ही है, किन्तु मिथको का सटीक और साभिप्राय प्रयोग काव्यभाषा की उत्कृष्टतम् विशेषताओं में एक है। भारती ने मिथकीय पात्रो के माध्यम से समकालीन समस्याओ से अपने को रूबरू किया है। विगत को आगत से जोडकर अनागत का सकेत देते है। जिसके लिए भारती ने अधिकतर महाभारत के पात्रों को ही आधार बनाया है। ऐसा करते समय उनकी काव्यभाषा में विचार और अनुभूति का ऐसा संगुफन हुआ है, जो विरले ही कवियों में दिखाई देता है। देश, काल और पात्रो के परिवेश से आबद्ध होकर भी साहित्य अपने आप को सदैव देशातीत, कालातीत और सार्वजनीन बनाये रखने की प्रकिया में ही आप्तकाम होता है। वर्तमान की भूमि पर स्थित साहित्य के अक्षयवट की जड़े अतीत के अतल तक जा पहॅुचती है और उसका समग्र विकास प्रस्फुटन, पल्लवन और प्रतिफलन अनागत भविष्य के द्वार पर निरतर अपनी दस्तकें देता रहता है। भारती की रचनाओं मे अतीत केवल पुनरालेखन मात्र नहीं है बल्कि उनमे विचार पक्ष के ऐसे अनेक तत्वों का अन्तर्सगुफन लक्षित होता है जिसने उन्हे विश्वयुद्धोत्तर ह्रासोन्मुख सभ्यता का दस्तावेज बना दिया है। भारती की

इतिहास–दृष्टि अपनी रचनाओ (विशेषकर–'अधायुग' और 'कनुप्रिया' मे) मे अतीत और वर्तमान दोनो पर समान रूप से केन्द्रित रही है। वह मानते है कि इतिहास न कभी मरता है और न कभी अनुपयोगी ही होता है। इतिहास की उर्वरा भूमि पर ही वर्तमान एक बिरवे की भाति अकुरित होकर एक विशाल वृक्ष का रूप धारण करता है। और एक दिन अनागत भविष्य के सम्मुख स्वयं को जराजीर्ण पत्तों की तरह समर्पित कर देता है।

भारती ने अपने काव्य मे जिस मानवीय मूल्य की प्रतिष्ठा की है, उसका स्रोत है– सर्जन की शक्ति । इसी सर्जन की आस्था का स्वर 'थके हुए कलाकार से' कविता मे दिखाई देता है–

"इसी ध्वस मे मूर्च्छिता हो कही
पडी हो, नयी जिन्दगी, क्या पता ?
सृजन की थकन भूल जा देवता।"

('थके हुए कलाकार से'–'दूसरा सप्तक '– पृष्ठ– 163)

'दूसरा सप्तक' मे सकलित 'थके हुए कलाकार से' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों मे रोमैंटिक भावशीलता के स्थान पर कवि सर्जन की नई दिशा की खोज करता है। भावावेश और प्रणयाकाक्षा के मोह भंग के बाद रचनाकार सर्जन की उस सभावना की खोज करता है जो नए जीवन और नये मूल्यों की सृष्टि करने में समर्थ हो सकेगा।

"यह फूल और मोमबत्तियॉ और टूटे सपने
ये पागल क्षण,
यह काम–काज,दफ्तर–फाइल, उचटा–सा जी
भत्ता वेतन।
ये सब सच हैं!
इनमें से रत्ती भर न किसी से कोई कम,

अन्धी गलियो मे पथभ्रष्टो के गलत कदम
या चन्दा की छाया मे भर–भर आने वाली ऑखें नम,
बच्चो की सी दूधिया हॅसी या मन की लहरो पर
उतारते हुए कफन।
ये सब सच है।"

('फूल, मोमबत्तियॉ, सपने'–'ठडा लोहा'– वही पृष्ठ–102)

'ठडा लोहा' मे सकलित 'फूल, मोमबत्तियॉ, सपने' शीर्षक कविता में भारती की रोमैटिक प्रेम की कोमल कल्पना यथार्थ से टकराकर छिन्न भिन्न हो जाती है। अब वह एक ओर 'टूटे सपने पागल क्षण' को सच मानता है तो दूसरी ओर 'कामकाज, दफ्तर–फाइल,' उचटा–सा जी, भत्ता वेतन को भी सच मानता है। इस यथार्थ की टकराहट में प्रेम–प्रणय की मादकता, भटकन,भाव विह्वलता, कोमल पावन उल्लास सब अब 'मन की लहरो पर', 'उतराते हुए कफ़न' की तरह सच लगने लगता है।

"इतिहासो की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियो का आश्रय ले!"

('टूटा पहिया'– 'सात गीत वर्ष'– वही – पृष्ठ–171)

'सात गीत वर्ष' संग्रह में सकलित 'टूटा पहिया' शीर्षक कविता में 'महाभारत' की कथा के सन्दर्भ के आधार पर 'टूटा पहिया' एक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। मानवीय मूल्यों के सघर्ष में नगण्य ओर त्यक्त साहस के साथ चुनौती दे सकता है। जब अभिमन्यु चक्रव्यूह में घिर जाता है तब वह एक टूटे हुए पहिये के सहारे ही ब्रह्मास्त्रों से लोहा लेता है। त्यक्त होकर भी यह पहिया मानवीय इतिहास को गतिशील बना सकता है।

"असल मे हुआ यह था
मेरे चारो भाई जूझते अकेले रहे
मै तो किनारे खडा हर आने वाले से
घबराकर कहता था—"इधर मत,
इधर मत, इधरमत, आना जी तुम; इधर हम तटस्थ है।"

('बृहन्नला'— 'सातगीत वर्ष'—वही— पृष्ठ—169)

'सात गीत वर्ष' मे संकलित 'बृहन्नला' शीर्षक कविता मे 'बृहन्नला' के पौराणिक चरित्र को लेकर अपनी रचनाओ मे युग दृष्टि देने का दावा करने वाले अधुनिक रचनाकारों पर भारती ने सटीक व्यग्य किया है। आज रचनाकार सामाजिक जीवन मे चाटुकार विद्वानो, मूर्खों, महीषियो और अशिक्षित विदूषको से घिरा हुआ है। आज का भविष्य द्रष्टा रचनाकार वस्तुत. भीरू और नपुसक है, जो हर सघर्ष मे अलग खडा रहा है। यहॉ इस चरित्र की नपुसक कायरता व्यंजित है।

"नीचे की घाटी से
उपर के शिखरों पर
जिसको जाना था वह चला गया
हाय मुझी पर पग रख
मेरी बॉहो से
इतिहास तुम्हें ले गया!
सुनो कनु, सुनो
क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी तुम्हारे लिए
लीला भूमि और युद्ध क्षेत्र के
अलध्य अतंराल में।"

('सेतुः मैं'— 'कनुप्रिया'—वही—पृष्ठ—248)

'कनुप्रिया' के 'सेतुः मैं' शीर्षक गीत मे नारी – जागृति और स्वातर्न्तय के तर्क से भारती ने इतिहास–पुरूषो के प्रति उपालम्भ का प्रभावशाली काव्य रचा है। भारती की यह विशेषता रही है कि वे लगातार अपनी कविताओ मे स्त्री के शोषण को केन्द्र मे रखकर अतिमानवी प्रतिमाएँ अनावृत्त करते रहे हैं। वह कनुप्रिया जो एक दिन चरम साक्षात्कार के क्षणो मे रीत–रीत जाती थी आज कनु के 'मन्त्र पढे वाण–से' छूट जानें पर 'कापंती प्रत्यंचा–सी' शेष रह जाती हैं। इसी एकांत के क्षणो मे वह सोचती है– 'क्या मै सिर्फ एक सेतु थी तुम्हारे लिए'

"तुमने मुझे पुकारा था न
मैं आ गई हूँ कनु।
और जन्मांतरो की अनत पगडंडी के
कठिनतम मोड पर खडी होकर
तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।
कि, इस बार इतिहास बनाते समय
तुम अकेले न छूट जाओ।
सुनो मेरे प्यार!
प्रगाढ केलि क्षणो मे अपनी अतरग
सखी की तुमने बॉहों में गूँथा
पर इतिहास में गूँथने से हिचक क्यों गये प्रभु?"

('समापन'–'कनुप्रिया'– वही –पृष्ठ–265–266)

'कनुप्रिया' के 'समापन' शीर्षक गीत की इन पंक्तियों में एक ऐसी राधा का उद्‌भव होता है जो अपने अधिकारों के प्रति सजग और सक्रिय है। यह राधा कृष्ण के वियोग मे अश्रुपात करने वाली न होकर कृष्ण से परिवाद और उपालम्भ की मुद्रा में कहती है–'इतिहास में गूँथने से हिचक क्यो गये प्रभु?'

यहाँ भारतीय नारीत्व की अस्मिता को नया सदर्भ, नया आयाम और नया अर्थ देने में कवि पूर्णतः सफल होता है।

"पता नहीं
प्रभु है या नहीं
किन्तु उस दिन यह सिद्ध हुआ
जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर, चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रो की दिशा बदल जाती है।
नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव– निर्णय बनाता मिटाता है।"

('अंधायुग'–'प्रथम अंक'–वही–पृष्ठ–372)

मूल्यों का सीधा सन्दर्भ उठाने के कारण 'अधायुग' मे कई जगह मूल्यों मे गहरी आस्था के कारण वक्तव्य भी कविता बन जाता है। यहाँ याचक तटस्थ साक्षी के रूप में स्वीकार करता है कि वे प्रभु हों या न हों, पर यह सिद्ध हो गया है कि अनासक्त भाव से जब व्यक्ति इतिहास को चुनौती देता है तब 'उस दिन नक्षत्रो की दिशा बदल जाती है।'

"मर्यादा मत छोड़ो
तोडी हुई मर्यादा
कुचले हुए अजगर–सी
गुंजलिका में कौरव वंश को लपेट कर
सूखी लकडी सा तोड डालेगी"

('अंधायुग'–'प्रथम अंक'– वही –पृष्ठ–366)

विदुर के चरित्र का उपयोग सारे नाटक में विवेक चेतना के रूप में किया गया है, जिसकी अवहेलना की जाती रही है। घृतराष्ट्र के यह कहने पर

कि—'जीवन में' प्रथम बार आज मुझे आशका व्यापी है।' विदुर ने कहा कि यह आशका वर्षों पहले सबको व्यापी थी। इसी अन्त.पुर मे आकर कृष्ण ने 'मर्यादा न तोडने' के लिए कहा था।

"मर्यादा युक्त आचरण मे
नित नूतन सृजन मे
निर्भयता के
साहस के
ममता के
रस के
क्षण में
जीवित और सक्रिय हो उठूँगा मैं बार—बार"

('अधायुग'— 'प्रभु की मृत्यु'—वही—पृष्ठ—454)

व्यक्ति के रूप मे कृष्ण सबकी ईर्ष्या और आक्रोश के कारण हैं, पर जिन जीवन मूल्यो का सन्दर्भ कृष्ण उपस्थित करते हैं वे काम्य है। कृष्ण ने आदर्श और यथार्थ को जिस समन्वित रूप मे लिया है, वह उनके मृत्यु पूर्व दिये गये इस वक्तव्य में मुखरित हुआ है। मर्यादा और रस रूप को घुलाकर ही ऐसी चरित्र रचना संभव है। 'मर्यादा युक्त आचरण' और 'रस के क्षण' के बीच जो द्वैत कभी—कभी उभरता है, कवि उसे खुला और अनुत्तरित छोड देता है। और इसी मे कृष्ण के चरित्र का शाश्वत आकर्षण है।

अध्याय-7
उपसंहार
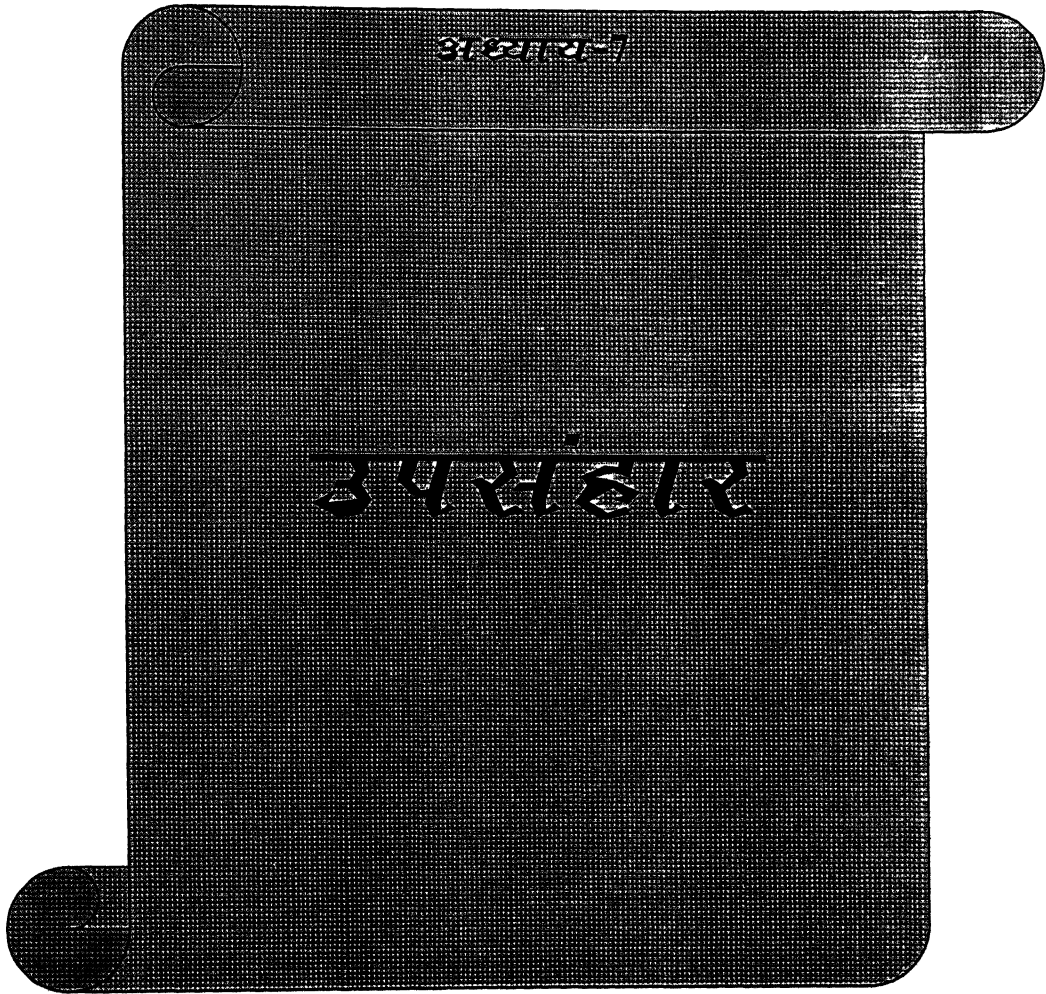
'दूसरा सप्तक' के कवि उस सक्रमण रेखा पर खड़े हैं जहॉ प्रयोगवाद का पर्यवसान और नयी कविता के क्षितिज का उद्घाटन हो रहा है। 'दूसरा सप्तक' के सातो कवियो को नयी कविता की शीर्षस्थ कवियो के रूप मे देखा और स्वीकार किया गया। किन्तु यह संक्रमण कोई क्रान्तिकारी और परस्पर विरोधी परिदृश्य नही प्रस्तुत करते। 'दूसरा सप्तक' के सम्पादक वही अज्ञेय है जिन्होने 'तारसप्तक' का सम्पादन किया था, और जिनके नाम पर प्रयोगवादी काव्य धारा के प्रवर्तन का दायित्व मढा गया। 'दूसरा सप्तक' के कवि प्रयोगशील काव्यधारा की प्रवहमानता के उतने ही बडे वाहक हैं, जितनी 'नयी कविता' की जमीन के निर्माता। अज्ञेय दोनों से समान गहराई से जुडे हुए हैं।

'दूसरा सप्तक' की कविताएँ और उनके रचयिता कवि अपनी सर्वाधिक विशिष्ठता की पहचान अपनी काव्य–भाषा के माध्यम से कराते हैं। इस शोधप्रबन्ध की तैयारी के क्रम मे बार–बार जिस विशिष्ठता ने शोधकर्ता को प्रभावित और अभिभूत किया वह इन कवियों की काव्य–भाषा ही थी। काव्य–भाषा के कितने आयाम इन कवियों की काव्य यात्रा मे खुलते है, वह किसी भी सजग पाठक को चमत्कृत करने के लिए पर्याप्त हैं। यो तो 'दूसरा सप्तक' की भूमिका मे ही अज्ञेय ने सर्वाधिक बल कविता की भाषा पर ही दिया है, किन्तु ये कवि स्वयं अपनी कविता की भाषा इनती शिद्दत से और मौलिक सर्जनात्मक प्रयास से निर्मित करते है कि पाठक इस नयी कविता भाषा को स्वायत्त करने में बहुत गहरी पाठकीय क्षमता का और ग्रहणशीलता की जरूरत महसूस करता है।

अलग–अलग कवियो की काव्य–यात्रा, अलग–अलग भाषिक बनावट का, अलग–अलग भाषिक सौन्दर्य बोध का, अलग–अलग संवेदनाओं को चरितार्थ करने की क्षमता का परिचय देती है। नरेश मेहता की काव्य–भाषा अपनी प्रारम्भिक कविताओं के दौर से ही एक नये प्रकार के वैदिक शब्दावली और

औपनिषदिक बिम्ब लोक की तलाश प्रारम्भ कर देती है। 'दूसरा सप्तक' की कवितओ मे ही 'जन–गरबा–चरैवेति' अथवा 'उषस· अश्व की वल्गा' अथवा 'उषस्' श्रृखंला की कविताएँ हमे नरेश मेहता के काव्य–भाषा की आगामी रूझान की ओर संकेत करती है। 'उत्सवा' तक आते–आते नरेश मेहता उस नयी काव्य भाषा की सिद्ध प्रयोक्ता बन जाते है। 'उत्सवा' की प्रत्येक कविता में हमे एक नयी आभा दिखती है और जैसे एक ललछौंही आभा के बीच प्राची का सूर्योदय होता है वैसे ही नरेश मेहता के काव्य बिम्ब नयी–नयी आभा के साथ पाठक की चेतना के समक्ष प्रकट होते हैं। कवि अपनी चेतना को उस ब्रह्माण्डीय धरातल पर ले जाता है जहॉ वह एक सर्वथा चमत्कारी भाषा लोक का आविष्कर्ता बन जाता है। 'उत्सवा' की अनेक कविताएँ जैसे 'लीला भाव' 'प्रार्थना–धेनुएँ' आदि इसी औपनिषदिक बिम्ब लोक को चरितार्थ करने वाली भाषा का उदाहरण हैं।

नरेश मेहता की काव्य भाषा का दूसरा आयाम उनकी कविता में इतिहास लोक से जुडी हुई अनुगूँजो से सम्बन्ध रखती हैं। 'पिछले दिनों नंगे पैरों' जैसे कविता संकलन हमे इतिहास के सूने खण्डहरों और गलियारों में ले जाते है जहॉ भाषा और अनुभूति एक तान हो जाते हैं, एक लय हो जाते हैं। भाषा की इस औपनिषदिकता और ऐतिहासिकता की अपनी विशिष्ठि छवियों के साथ नरेश मेहता एक समर्थ और विशिष्ठ भाषा के कवि के रूप में हमारे समक्ष उभरते ही चचले जाते है।

दूसरे विशिष्ठ कवि रघुवीर सहाय हैं। उनकी सम्पूर्ण काव्य–यात्रा से गुजरना भाषा की सर्जनात्मकता की नयी वीथियों से गुजरना है। भारतीय जन के सामान्यतम प्रतिनिधि के रूप में रघुवीर सहाय अपनी कविता का नागरिक बनाते हैं और उसे नयी नयी व्यंजनाओं से लैश करते जाते हैं। उनका 'हरचरना' भारतीय जन का एक सामान्यतम् प्रतिनिधि है। जिसके माध्यम से भारतीय गणतन्त्र की महिमा या महिमाशून्यता को पहचाना जा सकता है।

रघुवीर सहाय ने साहित्य और पत्रकारिता को एक दूसरे मे सक्रमित करने की आजीवन साधना की है। कविता मे उनका पत्रकार कितनी सहजता से अपनी पूरी रचनात्मकता को लेकर आ जाता है यह देखते ही बनता है। उनके काव्य सकलनो 'सीढियो पर धूप में', 'आत्महत्या के विरूद्व' 'हॅसो–हॅसो जल्दी हॅसो', 'लोग भूल गये है', 'कुछ पते कुछ चिढिढ्यॉ,' 'एक समय था'– से गुजरते हुए हम एक सुखद आश्चर्य से भरते चले जाते है। कैसे अभिधा लक्षणा में बदलती है और कैसे लक्षणा व्यजना मे इसका सम्यक एहसास हमें रघुवीर सहाय की कविताओ से गुजरते हुए होता है। कैसे व्यक्तिवाचक संज्ञा जाति वाचक सज्ञा और जातिवाचक सज्ञा भाववाचक सज्ञा बनने लगती है उसका उदाहरण भी हमें रघुवीर सहाय की कविताओ मे मिलता है।

रघुवीर सहाय अपनी भाषा में ही अपनी कविता के राष्ट्र को रचते और बनाते मिटाते चलते हैं। काव्य–भाषा अपनी पूरी साधारणता में दिखते हुए भी कैसे पाठक की चेतना को अत्यन्त गहराई मे विचलित करती है इसका अनुभव भी हमे रघुवीर सहाय की कविताओ के माध्यम से होता है।

'दूसरा सप्तक' के तीसरे महत्वपूर्ण कवि शमशेर बहादुर सिंह हैं। शमशेर बहादुर सिह ने अपनी कविता के लिए एक सर्वथा अलग प्रकार की बुनावट वाली भाषा का विकास किया है। इनकी काव्य–भाषा में एक खास प्रकार की झंकृतियॉ, एक खास प्रकार की अनुभूति लयता तथा एक खास प्रकार की सस्पर्शिता को चरितार्थ करने का प्रयास किया गया है। शमशेर बहादुर सिह न केवल 'दूसरा सप्तक' बल्कि सम्पूर्ण नयी कविता के परिसर में अपनी काव्यानुभूति और उसको वहन करने वाली काव्य–भाषा की विशिष्ठता के नाते सभी अन्य कवियो से अलग दिखते है। इसीलिए कोई उन्हें 'कवियो का कवि' कहता है और कोई उनकी काव्यानुभूति की बनावट का अत्यन्त विशेषीकृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। शमशेर की काव्य–भाषा अपने ऐन्द्रिय बोध में अपनी

झकृतियो मे विजली की भांति अपनी कौंध और प्रकाश में अपने शब्दो की आवाज और गन्ध मे सर्वथा मौलिक लगते हैं। जहॉ वे विल्कुल अभिधा के स्तर पर होते है वहॉ भी उनकी कविता एक विशेष झकार से भरी हुई होती है, जैसे 'वाम–वाम–वाम दिशा', 'समय साम्यवादी' आदि।

शमशेर के यहॉ भाषा कभी ध्वनि, कभी प्रकाश, कभी लय, कभी सुर, कभी चित्र, और कभी इन सबका मिला जुला सश्लेष बनकर सामने आती है। यदि इनकी 'दूसरा सप्तक' मे संग्रहीत कविताओं से ही प्रारम्भ करें और 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ', 'इतने पास अपने' और 'काल तुझसे होड है मेरी' सकलनों से गुजरे तो इस यात्रा मे भाषा की जो छवियॉ, ध्वन्यात्मकता, चित्रात्मकता आदि का साक्षात्कार होता है, वह निश्चय ही अभूतपूर्व है। शमशेर कही अपनी कविता का स्वय सुनते हुए प्रतीत होते है, कहीं अपने ही द्वारा रचे हुए बिम्बो से विमुग्ध होते हुए और कही एक लम्बे अन्तराल में खामोश पडे दिखते हैं। यह ठीक ही कहा गया है कि शमशेर की कविता शब्दो के बीच के अन्तरालों की कविता है। इन अन्तरालों को हर पाठक अपनी कल्पना और सृजनशीलता के आधार पर भरता है और एक सर्वथा अपना चित्र प्राप्त करता है। साही जैसा प्रबुद्व आलोचक, बुद्धि से सम्पन्न कवि भी शमशेर बहादुर सिंह के काव्य वैशिष्ट्य से इस कदर अभिभूत होता है कि उनकी काव्यानुभूति की बनावट पर पूरा लम्बा आलेख ही लिख डालता है। कहने को तो कहा जाता है कि शमशेर एक बामपन्थी और कम्युनिष्ठ विचार धारा के कवि रहे हैं परन्तु सच्चाई यह है कि शमशेर सही अर्थो मे एक सच्चे और विशुद्ध कवि है और उनकी सबसे बड़ी विशिष्ठता उनकी काव्य–भाषा, उसका विन्यास और उसकी ध्वन्यात्मकता है। और यह अत्यन्त स्वाभाविक भी है क्योंकि शमशेर की सर्जनात्मक बनावट में संगीत चित्रकला और उर्दू की गज़लियत का गहरा योगदान है। शमशेर के काव्य–भाषा की सबसे बड़ी खूबी उसकी मृदुता है।

शमशेर पाठक की चेतना को सहलाते हुए सवेदित करते हैं। साथ ही जैसे उॅगुलियों से वीणा के तार को छेडने पर नाना प्रकार की ध्वनियॉ उत्पन्न होती हैं, शमशेर की कविता पढते समय उन ध्वनियों का हमें बार–बार एहसास होता है। मलयज ने ठीक ही लिखा है– ''शमशेर जी के बारे मे सोचते समय हमेशा चार्ल्स लैम्ब के एक आत्मपरक निबन्ध 'ड्रीम चिल्ड्रेन' की याद आती है... कल्पना–निर्मित शिशु, जो यर्थाथ की अगुलियों से छूते ही तिरोहित हो जाते हैं.. शमशेर जी जब अपने बारे मे, अपनी काव्य प्रकिया के बारे में, देश, समाज, भाषा और रजनीति के बारे मे बातचीत कर रहे होते है तब वह कल्पना–शिशु अनायास ही जीवित हो उठता है, ऑखों के आगे साक्षात वही भोला विश्वास, वही–सहज तरलता और यथार्थ की वाह्य आकृतियों से मेलखाती उसकी भावमुद्रा.....लगता है जो सच और ठोस और यथार्थ करके दीख रहा है वह सब कल्पित है, बनावटी और असहज और यह जो सामने कल्पना की आखों के आगे मूर्तिमान खडा है वही एक मात्र सच है। शमशेर जी बात करते रहते हैं (किससे?) और वह कल्पना की आदर्श उदात्त मूरत रंग पाती रहती है: उसकी भाव मुद्राएं अपने भीतर भान अनुभूतियों की तल्ख सच्चाइयॉ छुपाये हुए लगती हैं। उसकी सहजता के पीछे एक गूढ नियम झलकता है–ऐसा नियम और इतना क्लासिक सहज, जो कि एक सीधी रेखा को बस एक सीधी रेखा ही बनाये रखने के लिए जरूरी हो– और शमशेर जी शब्दों के रूढ़ अर्थो से मुक्त एक ऐसी दुनिया की रचना करने लगते हैं जो सिर्फ उनकी दुनिया है। वह कौन सी प्रकिया है जिससे शमशेर जी इस दुनिया की रचना करते हैं सिर्फ अपने को और भी एकाकी करते जाने के लिए? वह कौन सा तत्व है इस दुनिया के बनने की प्रकिया में जो हर शब्द को काव्य शब्द में बदल देता है और हर काव्य अर्थ को काव्य अर्थ मे? क्या यह एक असभव की दुनिया है?''

('बात बोलेगी पर कब'–'कविता से साक्षात्कार'–मलयज–पृष्ठ–21)

'दूसरा सप्तक' के जिन पाच कवियो का विस्तार से अध्ययन इस शोध–प्रबन्ध मे किया गया है, उसमे एक कवि भवानी प्रसाद मिश्र हैं। भवानी प्रसाद मिश्र की सम्पूर्ण विशिष्ठिता ही वस्तुत उनकी काव्य–भाषा की विशिष्ठता है। कैसे एक सामान्य सी बोलचाल की भाषा काव्य–भाषा मे बदलती है, इसका भरपूर उदाहरण भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा है। जब वे कहते है कि जिस तरह हम बोलते हैं उसी तरह लिखकर एक कवि बन सकता है तो हमें सहसा विश्वास नही होता क्योंकि आधुनिक काव्य–भाषा के सन्दर्भ मे बार–बार हमे यही समझाया जाता रहा है कि कविता तभी फलीभूत होती है जब हम उसमे प्रतीक बिम्ब और मिथक के तत्वों को सरल या जटिल तरीके से समाविष्ठ कर लेते हैं। किन्तु भवानी प्रसाद मिश्र ने इस सम्पूर्ण अवधारणा को ही अपनी काव्य–भाषा मे तोड दिया। नयी कविता की काव्य–भाषा का जहॉ एक ध्रुव मुक्तिबोध प्रस्तुत करते है वहीं दूसरा ध्रुव भवानी प्रसाद मिश्र प्रस्तुत करते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र किस प्रकार शब्द के उस अमूर्त आयाम को निर्मित करते हैं जहॉ शब्द ही शब्द हीनता की स्थिति को प्राप्त कर लेता है और यह शब्द हीनता ही विशेष प्रकार की दूरगामी अनुगॅूजो को निर्मित करती है। इन्हीं अनुगॅूजो को हम उनकी 'गीतफरोश, या 'सतपुड़ा के घने जंगल' या 'फूल लाया हॅू कमल के 'जैसी कविताओ मे सुनते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र भाषा की ऋजुता को अपनी जीवन की ऋजुता से प्राप्त करते हैं। उनकी काव्य–भाषा को बिना गांधी जी की दी हुई दृष्टि को समझे नहीं समझा जा सकता है, वह जितनी ऋजु है उतनी ही तपोसाध्य। गांधी की ऋजुता क्या थी? यही कि वे सत्य, अहिसा, अपरिग्रह, निर्भयता और प्रेम को जीवन में साध सके थे। किन्तु यह साधना क्या इतना सरल है? इसी प्रकार भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा की ऋजुता भी वैसी ही ऋजुता है। इसे साधना गहरे अनुशासन की मांग करता है और वह अनुशासन जीवन व्यस्था से ही जन्म ले सकता है इस अर्थ में भवानी

प्रसाद मिश्र एक ऐसी ऋजु काव्य भाषा की अविष्कर्ता रहे है जिन्होने भाषा के साथ–साथ अपने जीवन को भी ऋजु और मौलिक सच्चाइयो से संवलित किया है।

काव्य–भाषा की दृष्टि से डा0 धर्मवीर भारती अपने पहले की काव्य–भाषा अर्थात छाया वादोत्तर कविता की भाषा से बहुत अधिक जुडे हुए है। सम्भवत. 'दूसरा सप्तक' के कवियो मे केवल भारती ही ऐसे है, जिनकी भाषा छायावादोत्तर कविता की भाषा का प्रसाद लगती है। भाषा की धारावाहिकता अविछिन्न रूप से भारती की कविता में प्रवहमान है। फिर भी भारती एक नयी भाषा अपने लिए गढते है और उस भाषा का रचाव कुछ इस प्रकार काव्य मे सम्भव हो सका है कि वह पाठक को सबसे अधिक गुदगुदाता है। संस्पर्शिता और प्रवहमानता की दृष्टि से भारती की काव्य–भाषा बेजोड़ है। उनके मन में भाषा को लेकर कोई वर्जना का भाव नही है न तो वे उर्दू, फारसी की शब्दावली से परहेज करते है न तत्सम, सस्कृत शब्दों से उन्हे कोई आपत्ति है। उनके सामने एक ही शर्त है कविता की लय और भाषा का प्रवाह। इस बात को वे ही पाठक अच्छी तरह से समझेंगे जिन्होंने पहाडी नदियों में बहते हुए प्रशतर पिण्डों को आपस में रगड–रगड कर सुघर और सुडौल होते हुए देखा है। उनकी भाषा के प्रवाह मे अनगढ शब्द भी इसी तरह ढ़लते और सुधर होते चलते हैं। उदाहरण के लिए–

> "अगर मैंने किसी के होठ के पाटल कभी चूमे
> अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे
> अगर मैने किसी की सांस की पुरवाइयॉ चूमी
> अगर मैने किसी की मदभरी अगडाइयॉ चूमी
> महज इससे किसी स्वर मुझ पर शाप कैसे हो?"

विश्लेषण करके बताने की जरूरत नही है किन्तु 'पाटल' और 'शाप' की तत्समता 'पुरवाइयो' और 'अगडाइयों' की उर्दू भाषा की लयात्मकता का जो नायाब संश्लेष भारती की काव्य–भाषा मे सर्वत्र रवॉ है, वह अपने आप मे एक विरल काव्यात्मक उपलब्धि है। भारती के यहॉ भाषा चेरी के रूप मे हाजिर है। भाषा की निरायाशता और अद्‌भुत प्रवहमानता भारती की महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। जहॉ अन्य नये कवियो मे भाषा एक सायास माध्यम के रूप मे दिखती है वही भारती के यहॉ वह पहाडी झरने की तरह कल–कल निनाद करती हुई आगे को बहती चली जाती है–

"चूमता आषाढ़ की पहली घटाओं को
झूमता आता हवा का एक झोका सर्द
कॉपती मन की मुदी मासूम कलियॉ कांपती
और खूशबू सा विखर जाता हवा में दर्द"

इस तरह की लहराती हुई काव्यभाषा भारती के काव्य परिसर मे जगह–जगह विखरी हुई दिखती है।

किन्तु भारती की काव्य–भाषा एक स्तरीय नहीं है। जहॉ 'दूसरा सप्तक' मे संकलित उनकी कविताऍ, 'ठंडालोहा' और 'सात गीत वर्ष' की उनकी कविताऍ और एक हद तक 'कनुप्रिया' की भी कविताओं की भाषा में यह लय युक्त प्रवाह पाठक को अभिूभत करता है, वहीं 'अन्धायुग' मे भारती एक नया अवतार लेते है। रूमानियत का कवि–सहसा युग की गम्भीरतम् समस्याओं पर मनन करता हुआ एक गहरे चितंक कवि की भूमिका में उतरता है और समाज, राजनीति, युद्ध और सांसारिक पुरूषार्थों पर मनन करने वाला एक ऋषि के रूप मे पाठक के सामने आर्विभूत होता है और उसी भूमिका मे कवि की भाषा एक नया रूप लेती है। चिन्तन की भाषा, भारती की नयी उपलब्धि है। जो अन्धायुग के माध्यम से नयी कविता के पूरे देश और काल पर छा जाती है। भारती को

रूमानियत का फतवा देने वाले सहसा सकते मे आ जाते हैं और उन्हे लगता है कि भारती निश्चित रूप से एक बहुआयामी कवि व्यक्तित्व के स्वामी है और उनकी काव्य–भाषा भी उतनी ही बहुआयामी है। 'अन्धायुग' की काव्य–भाषा का सबसे केन्द्रीय आयाम उसकी नाटकीयता है। 'अन्धायुग' स्वयं एक नाट्य काव्य है जो भारती का पहला और अन्तिम नाट्य प्रयोग है और हर प्रकार से असाधारण और अतुलनीय है। और इस प्रकार हम देखते हैं कि भारती की काव्य–भाषा की धारावाहिकता सहसा एक नाटकीय चिन्तन परक भाषा के धरातल पर खडी हो जाती है और भारती को सर्वाधिक आधुनिक रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठा देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :
सूची

1 दूसरा सप्तक : स0 अज्ञेय – भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, छँठा सस्करण–1996

2 अज्ञेय और तार सप्तक· स0 डॉ0 सत्य प्रकाश मिश्र– प्रकाशक– इलाहाबाद संग्रहालय, प्रथम सस्करण–1995

3. काव्य–भाषा पर तीन निबन्धः स0 डॉ0 सत्य प्रकाश मिश्र– लोक भारती प्रकाशन, प्रथम सस्करण–1989

4. भाषा और संवेदनाःडॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी– लोक भारती प्रकाशन, तीसरा संस्करण–1981

5 नयी कवितायेःएक साक्ष्यःडॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी– लोक भारती प्रकाशन, तृतीय संस्करण–1998

6. तार सप्तक से गद्य कविता· डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी–लोक भारती प्रकाशन, प्रथम सस्करण–1997

7. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकासः डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी– लोकभारती प्रकाशन, पुनर्मुद्रण–1993

8. हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिपेक्ष्यः डॉ0 राम कमल राय–लोक भारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण–1981

9. नई कविता नई दृष्टिः डॉ0 राम कमल राय– प्रकाशक–हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1997

10. नई कविता और अस्तित्ववादः राम विलास शर्मा–राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम छात्र संस्करण–1993

11. नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर : संतोष तिवारी

12. छठवॉ दशक : विजय देव नारायण साही – प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद–1987

13. कविता से साक्षात्कार–मलयज

14. नयी कविता के प्रतिमानः लक्ष्मी कान्त वर्मा, भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद

15. नये प्रतिमान पुराने निकष . लक्ष्मी कान्त वर्मा–लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996

16. कविता के नये प्रतिमान. डॉ0 नामवर सिंह–राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली–1993

17 नयी कविता मे युग बोधः डॉ0 मन्जू दूबे–अनुपम प्रकाशन, पटना–1987

18. नयी कविताः डॉ0 कान्ति कुमार–मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी–1972

19. नयी कविता–सीमाएँ और समस्याएँ . गिरिजा कुमार माथुर–1966

20 नया हिन्दी काव्यः डॉ शिव कुमार मिश्र – 1962

21. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों · स0 श्याम सुन्दर घोष – सत्साहित्य प्रकाशन दिल्ली–प्रथम सस्करण–1983

22. नयी कविता–नया मूल्यांकन : डॉ0 प्रेमशंकर – 1988

23. सप्तक काव्य : डॉ0 अरविन्द – मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड–1976

24. सप्तक त्रय : आधुनिकता एव परम्परा – डॉ0 सूर्य प्रकाश विद्यालकार–शलभ बुक हाउस, मेरठ ।

25. प्रतिनिधि कविताएँ : स0 सुरेश शर्मा – राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण–1994

26. कबीर : डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई–1964

27. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान : केदार नाथ सिंह–भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली–1971

28. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहासः डॉ0 बच्चन सिंह–लोकभारती प्रकाशन–संशोधित सस्करण–1999
29. रघुवीर सहाय का कवि कर्म : सुरेश शर्मा, पीपुल्स लिटरेसी प्रथम संस्करण–1981
30. रघुवीर सहाय की काव्यानुभूति और काव्य–भाषाः डॉ0 अनन्त कीर्ति तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी–1996
31. सीढियों पर धूप में :(1960) रघुवीर सहाय
32. आत्महत्या के विरूद्ध :(1967) रघुवीर सहाय
33 हॅसो–हॅसो जल्दी हॅसो ·(1975) रघुवीर सहाय
34 लोग भूल गये है .(1982) रघुवीर सहाय
35. कुछ पते कुछ चिठ्ठियॉ ·(1989) रघुवीर सहाय
36. एक समय था :(1995) रघुवीर सहाय
37. प्रतिनिधि कविताएँ (रधुवीर सहाय). स0–सुरेश शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–1994
38. भारती का काव्यः रघुवंश (स0 इन्द्रनाथ मदान)–दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड प्रथम संस्करण–1980
39. धर्मवीर भारती : स0 प्रभाकर श्रोत्रिय – आयाम प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–1992
40. आजकल (भारती प्रसंग): अगस्त 2002– सम्पादक–सुभाष केड़िया
41. ठडा लोहा (1952) · डॉ0 धर्मवीर भारती
42 सात गीत वर्ष (1959): डॉ0 धर्मवीर भारती
43. कनुप्रिया : डॉ0 धर्मवीर भारती
44. सपना अभी भी (1993): डॉ0 धर्मवीर भारती
45. अंधायुग (1954): डॉ0 धर्मवीर भारती

46. धर्मवीर भारती ग्रन्थावली (भाग–तीन)·स0 चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सस्करण–1998
47 नरेश मेहता का काव्य, विमर्श और मूल्याकनः श्री प्रभाकर शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर–1979
48. कवि श्री नरेश मेहता और उनका काव्य · डॉ0 विष्णु प्रभा शर्मा
49 नरेश मेहता का काव्य प्रवृत्ति विश्लेषण : श्री प्रभाकर शर्मा
50. आधुनिकता से आगे–नरेश मेहता. डॉ0 मीरा श्रीवास्तव लोक भारती प्रकाशन
51. नरेश मेहता–कविता की उर्ध्व यात्रा : डॉ राम कमल राय–लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद ।
52 नरेश मेहता–एकान्त शिखर· डॉ0 प्रमोद त्रिवेदी–लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
53. वनपाखी सुनो (1957)· नरेश मेहता
54. बोलने दो चीड को (1961): नरेश मेहता
55. मेरा समर्पित एकान्त (1963): नरेश मेहता
56. उत्सवा (1979): नरेश मेहता
57. तुम मेरा मौन हो (1982): नरेश मेहता
58. अरण्या (1985): नरेश मेहता
59. आखिर समुद्र से तात्पर्य (1988): नरेश मेहता
60 देखना एक दिन (1990): नरेश मेहता
61 पिछले दिनो नंगे पैरों : नरेश मेहता
62. संशय की एक रात (1962): नरेश मेहता
63. महाप्रस्थान (1975): नरेश मेहता
64. प्रवाद पर्व (1977): नरेश मेहता

65. शबरी (1977): नरेश मेहता

66 शमशेर कवितालोक जगदीश माथुर–राधाकृष्ण प्रकाशन, 1982

67 शमशेर · प्रभाकर श्रोत्रिय – साहित्य अकादमी – 1997

68. कवियो का कवि शमशेर · डॉ0 रजना अरगडे–वाणी प्रकाशन नई दिल्ली–1988

69. शमशेर की कविता : नरेन्द्र वशिष्ठ : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–1980

70 कुछ कविताएँ (1959) शमशेर बहादुर सिंह

71. कुछ और कविताएँ (1961):शमशेर बहादुर सिंह

72. चुका भी हूँ मै (1975)·शमशेर बहादुर सिंह

73. इतने पास अपने (1980). शमशेर बहादुर सिह

74. उदिता (अभिव्यक्ति का संघर्ष)(1980)· शमशेर बहादुर सिह

75. बात बोलेगी, हम नहीं (1981): शमशेर बहादुर सिंह

76. काल तुझसे होड है मेरी (1988)· शमशेर बहादुर सिह

77. प्रतिनिधि कविताएँ (शमशेर बहादुर सिह : स0 नामवर सिंह–राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली

78. भवानी प्रसाद मिश्र काव्य की भाषा . डॉ0 संतोष कुमार तिवारी

79. हिन्दी अनुशीलन : भारतीय हिन्दी परिषद् का त्रैमासिक मुख–पत्र, संयुक्ताक, सितम्बर–दिसम्बर–1998

80. भवानी प्रसाद मिश्र और उनका काव्य : डॉ0 प्रभा

81. भवानी प्रसाद मिश्र . स0 सुरेश चन्द्र त्यागी

82. भवानी प्रसाद मिश्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व . राजकुमारी गडकर

83. भवानी भाई : स0 प्रेम शंकर रघुवंशी

84. समकालीन सृजन : स0 लक्ष्मण केडिया

85. गीत फ़रोश (1956):भवानी प्रसाद मिश्र

86. चकित है दुःख (1968) . भवानी प्रसाद मिश्र

87. अंधेरी कविताएँ (1968)· भवानी प्रसाद मिश्र

88. गांधी पंचशती (1970)· भवानी प्रसाद मिश्र

89. बुनी हुई रस्सी–(1971) : भवानी प्रसाद मिश्र

90. खुशबू के शिला लेख (1973)· भवानी प्रसाद मिश्र

91. व्यक्तित्व (1974): भवानी प्रसाद मिश्र

92. परिवर्तन जिए (1976): भवानी प्रसाद मिश्र

93. अनाम तुम आते हो (1976) भवानी प्रसाद मिश्र

94. इद न ममं (1977)· भवानी प्रसाद मिश्र

95 कालजयी (1980): भवानी प्रसाद मिश्र

96. शरीर, कविता, फसलें और फूल (1980): भवानी प्रसाद मिश्र

97. मान सरोवर दिन (1980)· भवानी प्रसाद मिश्र

98. सम्प्रति (1980): भवानी प्रसाद मिश्र

99. नीली रेखातक (1984). भवानी प्रसाद मिश्र

100. ये कोहरे मेरे हैं : भवानी प्रसाद मिश्र

101. त्रिकाल सन्ध्या : भवानी प्रसाद मिश्र

102. तूस की आग : भवानी प्रसाद मिश्र